# जन्मपत्री : बंटी की

मन्नू भंडारी का वक्तव्य

वह बांकुरा की एक साँझ थी !

अचानक ही पी. का फ़ोन आया—"तुमसे कुछ बहुत ज़रूरी बात करनी है, जैसे भी हो आज शाम को ही मिलो, बांकुरा में।" मैं उस ज़रूरी बात से कुछ परिचित भी थी और चिंतित भी। रेस्त्राँ की भीनी रोशनी में मेज़ पर आमने-सामने बैठकर, परेशान और बदहवास पी. ने कहा—"समस्या बंटी की है। तुम्हें शायद मालूम हो कि बंटी की माँ (पी. की पहली पत्नी) ने शादी कर ली। मैं बिलकुल नहीं चाहता कि अब वह वहाँ एक अवांछनीय तत्त्व बनकर रहे, इसलिए तय किया है कि बंटी को मैं अपने पास ले आऊँगा। अब से वह यहीं रहेगा।" और फिर वे देर तक यह बताते रहे कि बंटी से उन्हें कितना लगाव है, और इस नई व्यवस्था में वहाँ रहने से उसकी स्थिति क्या हो जाएगी। मैंने उनकी भावना, चिंता उद्विग्नता को समझते हुए अपनी पहली प्रतिक्रिया व्यक्त की—"आप ऐसा नहीं सोचते कि यह ग़लत होगा ? मुझे लगता है कि उसे अपनी माँ के पास ही रहना चाहिए क्योंकि साल में दो-एक बार मिलने के अलावा उसके साथ आपके आसंग नहीं हैं। जबकि माँ के साथ वह शुरू से रह रहा है, एकछत्र होकर रहा है। इस नाज़ुक उम्र में वहाँ से वह उखड़ जाएगा और संभवतः यहाँ जम नहीं पाएगा।" लंबी बातचीत के बाद तय हुआ कि बंटी अभी कुछ दिनों के लिए वहीं रहे। लेकिन उस दिन लौटते हुए सचमुच बंटी कहीं मेरे साथ चला आया। आकर डायरी में मैंने बंटी की पहली जन्मपत्री बनाई। उस रात बंटी की विभिन्न स्थितियों के न जाने कितने कल्पना-चित्र बनते-बिगड़ते रहे। मुझे लगा, बंटी अपनी नई माँ के घर आ गया है।

नई माँ और पिता के बीच एक बालिका। लगभग छः महीने बाद की घटना है। ड्राइंग रूम में अनेक बच्चे धमा-चौकड़ी मचाए हैं—उन्मुक्त और निश्चिंत। बारी-बारी से सब सोफ़े पर चढ़कर नीचे छलाँग लगा रहे

हैं। उस बच्ची का नंबर आता है। सोफ़े पर चढ़ने से पहले वह अपनी नई माँ की ओर देखती है। माँ शायद उसकी ओर देख भी नहीं रही थी, पर उन अनदेखी नज़रों में भी जाने ऐसा क्या था कि सोफ़े पर चढ़ने के लिए बच्ची का ऊपर उठा हुआ पैर वापस नीचे आ जाता है। बच्ची सहमकर पीछे हट जाती है। अनायास ही मेरे भीतर छः महीने पहले का बंटी उस वातावरण में व्याप्त एक सहमेपन के रूप में जाग उठता है। खेल उसी तरह चल निकला है, लेकिन अगर कोई इस सारे प्रवाह से अलग हटकर सहमा हुआ कोने में खड़ा है, तो वह है बंटी। रात में सोई तो लगा छः महीने पहले जिस बंटी को अपने साथ लाई थी, वह सिर्फ़ एक दयनीय मुरझायापन बनकर रह गया है।

एक और चित्र—सिर्फ पुरानी माँ और बंटी।

मैं कमरे में प्रवेश करती हूँ तो चौंकानेवाला दृश्य सामने आता है। टूटी हुई प्लेटें, बिस्कुट और टोस्ट बिखरे पड़े हैं और बंटी माँ के शरीर पर लगातार मुक्के मार रहा है, "...तुम कहाँ गई थीं...किसके साथ गई थीं...क्यों गई थीं...?" मेरी उपस्थिति के बावजूद यह दृश्य थोड़ी देर तक चलता रहा। माँ तिलमिलाहट, गुस्से और दुख को दबाकर मेरे सामने सहज होने की बहुत कोशिश करती है, लेकिन उस वातावरण के दमघोटू तनाव में वहाँ फिर कुछ भी सहज नहीं हो पाता।

घर लौटकर मैंने पाया कि बंटी एक आकार ग्रहण करने लगा है।

मुझे लगा कि बंटी किन्हीं दो-एक घरों में नहीं, आज के अनेक परिवारों में साँस ले रहा है—अलग-अलग संदर्भों में, अलग-अलग स्थितियों में। लेकिन एक बात मुझे इन बच्चों में समान लगी और वह यह कि ये सभी फ़ालतू, ग़ैर-ज़रूरी और अपनी जड़ों से कटे हुए हैं। किसी एक व्यक्ति के साथ घटी घटना दया, करुणा और भावुकता पैदा कर सकती है, लेकिन जब अनेक ज़िंदगियाँ एक जैसे साँचे में ही सामने आने लगती हैं तो दया और भावुकता के स्थान पर मन में धीरे-धीरे एक आतंक उभरने लगता है। मेरे साथ भी यही हुआ। बंटी के इन अलग-अलग टुकड़ों ने उस समय मुझे करुणा-विगलित और उच्छ्वसित ही किया था, लेकिन जब सब मिलाकर बंटी मेरे सामने खड़ा हुआ तो मैंने अपने-आपको आतंकित ही अधिक पाया, समाज की दिनों-दिन बढ़ती हुई एक ऐसी समस्या के रूप से, जिसका कहीं कोई हल नहीं दिखाई देता। यही कारण है कि बंटी मुझे तूफ़ानी समुद्र-यात्रा में किसी द्वीप पर छूटे हुए अकेले और असहाय बच्चे की तरह नहीं वरन् अपनी

यात्रा के कारणों के साथ और समानांतर जीते हुए दिखाई दिया। इसके बाद ही स्थितियों को देखने का सारा धरातल बदल गया। भावना के स्तर पर उद्वेलित और विगलित करनेवाला बंटी जब मेरे सामने एक भयावह सामाजिक समस्या के रूप में आया तो मेरी दृष्टि अनायास ही उसे जन्म देने, बनाने या बिगाड़नेवाले सारे सूत्रों, स्रोतों और संदर्भों की खोज और विश्लेषण की ओर दौड़ पड़ी। संदर्भों से काटकर किया हुआ बंटी का अध्ययन शरत्चंद्रीय भावुकता भले ही जगा दे, उसे एक वैचारिक धरातल नहीं दे सकता।

बंटी के तत्काल संदर्भ अजय और शकुन हैं। दूसरे शब्दों में वे संदर्भ अजय और शकुन के वैवाहिक संबंधों का अध्ययन और उसकी परिणति के रूप में ही मेरे सामने आए। यहाँ मुझे भारतजी की बात सही लगी कि जैनेंद्रजी ने स्त्री-पुरुष के संबंधों को जिस एकांतिक दृष्टि से देखा है, उसका एक अनिवार्य आयाम बंटी भी है क्योंकि शकुन-अजय के संबंधों की टकराहट में सबसे अधिक पिसता बंटी ही है। शकुन और अजय तो आपसी तनाव की असहनीयता से मुक्त होने के लिए एक-दूसरे से मुक्त हो जाते हैं, लेकिन बंटी क्या करे ? वह तो समान रूप से दोनों से जुड़ा है, यानी खंडित-निष्ठा उसकी नियति है। चूँकि वह शकुन के साथ रहता है इसलिए बंटी को उसकी समूची स्थिति के साथ समझने के लिए माँ-बेटे के आपसी संबंधों के विश्लेषण के साथ ही कुछ गरिमामयी मिथ्या धारणाएँ और सदियों पुरानी 'मिथ' टूटने लगीं। शकुन चक्की पीस-पीसकर बेटे का जीवन बनाने में अपने-आपको स्वाहा कर देनेवाली माँ नहीं थी; बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व, आकांक्षाएँ और आजीविका के साधनों से दृप्त माँ थी। इस नारी और माँ के आपसी द्वंद्व का अध्ययन ही शकुन को उसका वर्तमान रूप देता है। आज तो लगता है कि कहानी में बिखरी लोक-कथाएँ अनायास ही नहीं आ गई हैं, वे शकुन के जीवन की दो नितांत विरोधी स्थितियों, मिथ और वास्तविकता के अंतर्विरोध को उजागर करती हैं। अगर माँ की ममता के मारे उस राजकुमार की कहानी है, जो सात-समुद्र पार करके अपनी निष्ठा प्रमाणित करता है तो सोनल रानी की भी कहानी है, जो भूख लगने पर रूप बदलकर अपने ही बेटे को खा जाती है। शकुन बंटी को माध्यम बनाकर अजय से प्रतिशोध लेती हो या बंटी में तन्मय होकर अपनी सार्थकता तलाश करती हो, उसे कभी हथियार के रूप में इस्तेमाल करती हो या कभी अपने एकाकी जीवन के आधार के रूप

में...मुझे तो सभी कुछ को निहायत तटस्थ होकर एक मानवीय धरातल पर देखना-समझना था। ज़िंदगी को चलाने और निर्धारित करनेवाली कोई भी स्थिति कभी इकहरी नहीं होती, उसके पीछे एक साथ अनेक और कभी-कभी बड़ी विरोधी प्रेरणाएँ निरंतर सक्रिय रहती हैं। शकुन और बंटी—दोनों के चरित्रों की वास्तविकता इन्हीं अंतर्विरोधों में जीने की वास्तविकता है। परोक्ष रूप में अजय के जीवन की वास्तविकता भी यही है।

शायद यही कारण है कि मैं इस त्रिकोण की किसी एक भुजा को न अस्वीकार कर सकी, न ही ग़लत सिद्ध कर सकी। पात्र अपनी-अपनी दृष्टि, संवेदना की सीमाओं में एक-दूसरे को ग़लत-सही कहते रह सकते हैं, लेकिन देखना यह ज़रूरी होता है कि लेखकीय समझ किसी के प्रति पक्षपात तो नहीं कर रही ? ग़लत और सही अगर कोई हो सकते हैं तो वे अजय, शकुन और बंटी के आपसी संबंध। इस पूरी स्थिति की सबसे बड़ी विडंबना ही यह है कि इन संबंधों के लिए सबसे कम ज़िम्मेदार और सब ओर से बेगुनाह बंटी ही इस ट्रैजडी के त्रास को सबसे अधिक भोगता है। शकुन-अजय के संबंधों का तनाव और चटख बंटी की नस-नस में ही प्रतिध्वनित होती है। स्थिति की इस विडंबना ने ही मेरे मन में एक आतंक जगाया था। शकुन-अजय के आपसी संबंधों में बंटी चाहे कितना ही फ़ालतू और अवांछनीय हो गया हो, परंतु मेरी दृष्टि को सबसे अधिक उसी ने आकर्षित किया। वस्तुतः उपन्यासकार के लिए अप्रतिरोध चुनौती, सहानुभूति और मानवीय करुणा के केंद्र सिर्फ़ वे ही लोग हो पाते हैं, जो कहीं न कहीं फ़ालतू हो गए हैं।

बहरहाल, बंटी की यह यात्रा चाहे परिवार की संश्लिष्ट इकाई से टूटकर क्रमशः अकेले, जड़हीन, फ़ालतू और अनचाहे होते जाने की रही हो; लेकिन मेरे लिए यह यात्रा भावुकता, करुणा से गुज़रकर मानसिक यंत्रणा और सामाजिक प्रश्नाकुलता की रही है। जीते-जागते बंटी का तिल-तिल करके समाज की एक बेनाम इकाई-भर बनते चले जाना यदि पाठक को सिर्फ़ अश्रुविगलित ही करता है तो मैं समझूँगी कि यह पत्र सही पतों पर नहीं पहुँचा है।

—मन्नू भंडारी

# एक

ममी ड्रेसिंग टेबुल के सामने बैठी तैयार हो रही हैं। बंटी पीछे खड़ा चुपचाप देख रहा है। ममी जब भी कॉलेज जाने के लिए तैयार होती हैं, बंटी बड़े कौतूहल से देखता है। जान तो वह आज तक नहीं पाया, पर उसे हमेशा लगता है कि ड्रेसिंग टेबुल की इन रंग-बिरंगी शीशियों में, छोटी-बड़ी डिबियों में ज़रूर कोई जादू है कि ममी इन सबको लगाने के बाद एकदम बदल जाती हैं। कम से कम बंटी को ऐसा ही लगता है कि उसकी ममी अब उसकी नहीं रहीं, कोई और ही हो गईं।

पूरी तरह तैयार होकर, हाथ में पर्स लेकर ममी ने कहा "देखो बेटे, धूप में बाहर नहीं निकलना, हाँऽ।" फिर फूफी को आदेश दिया। "बंटी जो खाए वही बनाना, एकदम बंटी की मर्ज़ी का खाना, समझीं।"

चलने से पहले ममी ने उसका गाल थपथपाया। बालों में उँगलियाँ फँसाकर बड़े प्यार से बाल झिंझोड़ दिए। पर बंटी जैसे बुत बना खड़ा रहा। बाँह पकड़कर झूला नहीं, किसी चीज़ की फरमाइश नहीं की। ममी ने खींचकर उसे अपने पास सटा लिया। पर एकदम चिपककर भी बंटी को लगा जैसे ममी उससे बहुत दूर हैं। और फिर वे सचमुच ही दूर हो गईं। उनकी चप्पल की खटखट जब बरामदे की सीढ़ियों पर पहुँची तो बंटी कमरे के दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया। और ममी जब फाटक खोलकर, सड़क पार करके, घर के ठीक सामने बने कॉलेज में घुसीं तो बंटी दौड़कर अपने घर के फाटक पर खड़ा हो गया। सिर्फ़ दूर जाती हुई ममी को देखने के लिए। वह जानता है, ममी अब पीछे मुड़कर नहीं देखेंगी। नपे-तुले क़दम रखती हुई सीधी चलती चली जाएँगी। जैसे ही अपने कमरे के सामने पहुँचेंगी चपरासी सलाम ठोंकता हुआ दौड़ेगा और चिक उठाएगा। ममी अंदर घुसेंगी और एक बड़ी-सी मेज़ के पीछे रखी कुर्सी पर बैठ जाएँगी। मेज़ पर ढेर सारी चिट्ठियाँ होंगी। फाइलें होंगी। उस समय तक ममी एकदम बदल चुकी होंगी। कम से कम बंटी को उस कुर्सी पर बैठी ममी कभी अच्छी नहीं लगीं।

पहले जब कभी उसकी छुट्टी होती और ममी की नहीं होती, ममी उसे भी अपने साथ कॉलेज ले जाया करती थीं। चपरासी उसे देखते ही गोद में उठाने

लगता तो वह हाथ झटक देता। ममी के कमरे के एक कोने में ही उसके लिए एक छोटी-सी मेज़-कुर्सी लगवा दी जाती, जिस पर बैठकर वह ड्राइंग बनाया करता। कमरे में कोई भी घुसता तो एक बार हँसी लपेटकर, आँखों ही आँखों में ज़रूर उसे दुलरा देता। तब वह ममी की ओर देखता। पर उस कुर्सी पर बैठकर ममी का चेहरा अजीब तरह से सख़्त हो जाया करता है। लगता है, मानो अपने असली चेहरे पर कोई दूसरा चेहरा लगा लिया हो। ममी के पास ज़रूर एक और चेहरा है। चेहरा ही नहीं, आवाज़ भी कैसी सख़्त हो जाती है ! बोलती हैं तो लगता है जैसे डाँट रही हों। बंटी को ममी बहुत ही कम डाँटती हैं। बस, प्यार करती हैं इसीलिए यों सख़्त चेहरा लिए डाँटती, प्रिंसिपल की कुर्सी पर बैठी ममी उसे कभी अच्छी नहीं लगतीं।

वहाँ उसके और ममी के बीच में बहुत सारी चीज़ें आ जाती हैं। ममी का नक़ली चेहरा, कॉलेज, कॉलेज की बड़ी-सी बिल्डिंग, कॉलेज की ढेर सारी लड़कियाँ, कॉलेज के ढेर सारे काम ! थोड़ी-थोड़ी देर में बजनेवाले घंटे, घंटा बजने पर होनेवाली हलचल...इन सबके एक सिरे पर वह रहता है चुपचाप, सहमा-सा और दूसरे पर ममी रहती हैं—किसी को आदेश देती हुईं, किसी के साथ सलाह-मशवरा करती हुईं, किसी को डाँटती हुईं। और इसीलिए उसने कॉलेज जाना छोड़ दिया। घर में चाहे वह अकेला रह ले, पर वहाँ नहीं जाता। वहाँ किसके पास जाए ? ममी तो वहाँ रहती नहीं। रहती हैं बस एक प्रिंसिपल, जिनके चारों ओर बहुत सारे काम, बहुत सारे लोग रहते हैं। नहीं रहता है तो केवल बंटी।

थोड़ी देर तक बंटी गेट पर खड़े-खड़े आने-जानेवालों को यों ही देखता रहा। फिर लोहे के फाटक पर झूलने लगा। सामने से दो लड़के साइकिल पर बातें करते हुए गुज़र गए तो उसने सोचा, थोड़ा और बड़ा हो जाएगा तो वह भी दो पहिए की साइकिल खरीदेगा। वह जानता है, ममी उसे कभी बाहर निकलकर साइकिल नहीं चलाने देंगी। जाने क्यों, उन्हें हमेशा यही डर लगा रहता है कि वह बाहर निकला और एक्सीडेंट हुआ। हुँह ! वह ज़रूर बाहर चलाएगा। पुलिया पर जब बिना पैडिल मारे ही फर्राटे से साइकिल उतरती है तो कैसा मज़ा आता होगा ?

उसके बाद आँखों के सामने वे बड़े-बड़े मैदान तैर गए जो स्कूल जाते समय बस में से दूर-दूर दिखाई देते हैं। मैदान के दूसरे सिरे पर बनी हुई पहाड़ियाँ, जिनके पीछे से सूरज निकल-डूबकर दिन और रात करता है। कौन जाने उन पहाड़ियों की तलहटी में कोई साधू बैठा हो, जिसके पास जादू की खड़ाऊँ हों, जादू का कमंडल हो। एक बार जाकर ज़रूर देखना चाहिए, पर जाए कैसे ? साइकिल मिलने से जाया जा सकता है। बस, किसी को बताए नहीं और चलता जाए, चलता चला जाए तो पहुँच ही सकता है। पर ममी को मालूम पड़ जाए तो...बाप रे...

ममी उसे बहुत ज़्यादा घर से बाहर नहीं जाने देती हैं। पर ममी को पता ही नहीं चल पाता है कि पलंग पर उनकी बगल में लेटे-लेटे वह उन साधुओं की तलाश में कहाँ-कहाँ घूमता है ? अनदेखे-अनजाने पहाड़ों में, जंगलों में...घाटियों में...

अब छुट्टी के दिन समझ ही नहीं आता, वह क्या करे ? एक बार यों ही बगीचे का चक्कर लगाया। मोगरे खूब महके हुए थे। एक-एक पौधे को उसने खूब प्यार से छुआ। फिर गिनकर देखा, कितनी नई कलियाँ खिली हैं। हर एक पौधे की फूल-पत्तियों का हिसाब-किताब उसके पास है। एक-दो पौधे की पत्तियाँ गंदी लगीं तो जल्दी से पाइप लेकर उनको धोया। कुछ इस ढंग से जैसे ममी सवेरे-सवेरे उसका मुँह धुलाती हैं।

''बस, हो गए साफ़। चलो, अब हवा में झूलो।''

भीतर आया तो कमरे में घुसते ही नज़र ड्रेसिंग-टेबुल पर गई। वही रंग-बिरंगी शीशियाँ ! और ममी का वही सख़्त चेहरा याद आ गया...रूखा-रूखा और एकदम बदला हुआ। कैसे बदल जाता है चेहरा ? और तब न जाने कितनी बातें एक साथ दिमाग़ में घुमड़ने लगीं।

''तुम यहाँ खड़े-खड़े क्या कर रहे हो बंटी भय्या ? चलकर नहा काहे नहीं लेते ?'' हाथ में झाड़ू लिए-लिए फूफी घुसी तो बंटी ने झाड़ू छीन लिया और उसके हाथ पर झूलता हुआ बोला, ''फूफी, वह कहानी सुनाओ तो सोनल रानी की, जो सचमुच में डायन थी और रानी बनकर रहती थी।''

''एल्लो, और सुनो ! यह कहानी कहने-सुनने का बखत है ! काम सारा पड़ा है, और तुम्हें कहानी सूझ रही है। कहानी रात में सुनी जाती है, दिन में नहीं।''

''नहीं मैं अभी सुनूँगा। कोई काम-वाम नहीं।'' फिर आँखों में जाने कितना कौतूहल भरकर पूछा, ''अच्छा फूफी, वह डायन से रानी कैसे बन जाती थी ? उसके पास जादू था ?''

''और क्या तो ? डायन थी, सारे जादू बस में कर रखे थे। बस, जो चाहती बन जाती। मन होता वैसा भेस धर लेती।''

''क्यों फूफी, आदमी भी चाहे तो ऐसा कर सकता है ?''

''कइसे कर लेगा आदमी ? आदमी के बस में क्या जादू होता है ?''

''तुमने डायन देखी है फूफी ? कैसी होती होगी ? जब आदमी के भेष में होती होगी तब तो कोई पहचान भी नहीं सकता होगा।'' बंटी की आँखों में जाने कैसे-कैसे चित्र तैरने लगे।

''अरे, हमने नहीं देखी कोई डायन-वायन, तुम चलकर नहा लो।''

''नहीं, अभी नहीं नहाता।'' और बंटी पीछे के आँगन में आया तो झम-झम

करती सोनल रानी भी साथ आ गई। सतमंज़िले महल में रहनेवाली, सात सौ दास-दासियों से घिरी सोनल रानी। ऐसा रूप कि न लोगों ने देखा, न सुना। राजा तो जैसे प्राण देते। कोई भला देखता भी कैसे ? वह रूप क्या कोई आदमी का था ? वह तो डायन का जादू था।

फिर धीरे-धीरे कहानी की एक पूरी की पूरी दुनिया खुलती चली जाती। भेड़ बनाकर रखे हुए राजकुमार...मैना बनाकर रखी हुई राजकुमारी...ऐसा कुछ होता ज़रूर है, जिससे आदमी भेष बदल लेता है।

बंटी फिर भीतर गया। चुपचाप ड्रेसिंग टेबुल के पास जाकर शीशियों को उठा-उठाकर देखने लगा। एक बार मन हुआ अपने मुँह पर भी लगा देखे। क्या उसका चेहरा भी ममी की तरह बदल जाएगा ?

"यह क्या ? फिर तुम ड्रेसिंग-टेबुल पर पहुँच गए ?" फूफी खड़ी हँस रही थी। बंटी एकदम सकपका गया।

"हम कहते हैं, यही सौख रहे तुम्हारे तो बड़े होकर तुम ज़रूर लड़की बन जाओगे।"

"मारूँगा मैं, फिर वही गंदी बात कही तो !" बंटी हाथ उठाकर अपनी झेंप गुस्से में छिपाने लगा।

फूफी भी अजब है ! ममी कभी प्यार करते हुए उसे गोद में बिठा लेंगी या अपने साथ लिटाकर कहानी सुनाएँगी...तो हमेशा उसे ऐसे ही चिढ़ाएँगी...

"तुम अभी तक माँ की गोद में चिपककर बैठते हो ? छिः-छिः, तुम तो एकदम लड़की हो बंटी भय्या !"

"देख लो ममी, यह फूफी..."

पर ममी है कि फूफी को कुछ नहीं कहतीं। बस, हँसती रहती हैं, क्योंकि उस समय घर में जो रहती हैं ममी ! वह भी एकदम ममी बनी हुई। कॉलेज में हो तो पता लगे इस फूफी को। ऐसी घुड़की मिले कि सारा चिढ़ाना भूल जाए।

"मेरा तो बेटा भी यही है और बेटी भी यही है।" हँसती हुई ममी उसे अपने से और ज़्यादा सटा लेती हैं।

उस समय फूफी के सामने माँ की बाँहों से छूटकर भागने के लिए वह ज़रूर कसमसाता रहता है, पर यों उसे ममी की गोद में बैठना, उनके साथ सटकर सोना अच्छा लगता है। सोने से पहले ममी उसे रोज़ कहानी सुनाती हैं...राजा-रानी की, परियों की। ऐसे-ऐसे राजकुमारों की, जो अपनी माँ को बहुत प्यार करते थे और अपनी माँ के लिए बड़े-बड़े समुद्र तैर गए थे, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ पार कर गए थे।

फिर ममी उसके गाल सहलाते हुए पूछतीं, "अच्छा, बता तू मेरे लिए इतना सब करेगा बड़ा होकर या कि निकाल बाहर करेगा...हटाओ बुढ़िया को, बोर

करती है।"

"धत्, ममी को कभी नहीं छोड़ूँगा।"

तब ममी निहाल होकर उसे बाँहों में भर लेतीं और उसके गालों पर ढेर सारे किस्सू देतीं। फिर पता नहीं छत में क्या देखने लगतीं। बस, फिर देखती ही रह जातीं और उसे लगता जैसे उसके और ममी के बीच में फिर कहीं कोई आ गया है। पर कौन ? यह वह न समझ पाता। ममी के चेहरे पर गहराती हुई उदासी की परतें उसे कहीं हलके-से बेचैन कर देतीं। उसका मन करता कि ममी को पक्की तरह समझा दे कि वह उन्हें कब्भी-कब्भी नहीं छोड़ेगा। पर कैसे ? और जब कुछ भी समझ में नहीं आता तो वह ममी के गले में हाथ डालकर लिपट जाता।

तभी फूफी की बात याद आ जाती है। हुँह ! फूफी बकवास करती है। कहीं ममी को प्यार करने से या कि ममी के साथ सोने से कोई लड़का लड़की बन जाता होगा भला !

"तुम नहा लो बंटी भय्या ! कहो तो हम नहला दें ?"

"नहीं, अपने-आप नहाऊँगा। बड़ी आई नहलानेवाली !'

"तो जाओ अपने आप नहाओ। हम कपड़ा-वपड़ा निकालकर रख देते हैं।'

"अभी नहीं नहाता, जब मर्ज़ी आएगी नहाऊँगा।" फूफी को लेकर अभी भी गुस्सा भरा हुआ है।

बंटी ने अपनी अलमारी खोली। ममी के खरीदे हुए और पापा के भेजे हुए खिलौनों से अलमारी भरी हुई है। उसने नई वाली बंदूक निकाली, खूब बड़ी-सी। और एकदम आँगन में झाड़ू लगाती हुई फूफी की पीठ में नली लगा दी। बोला, "अब कहेगी कभी लड़की, कर दूँ शूट ? गोली से उड़ा दूँगा, हाँ, याद रखना !"

बंटी जब बहुत लाड़ में होता है या बहुत नाराज़ तो फूफी को तू ही कहता है।

"और क्या, अब तुम बंदूक ही तो मारोगे...इसी दिन के लिए तो पाल-पोसकर बड़ा किया है।"

तब पता नहीं क्यों ममी की कोई बात याद आ गई और बंटी का हाथ अपने-आप हट गया।

ख़याल आया, उसने अपनी बंदूक टीटू को तो दिखाई ही नहीं। उसके मुकाबले में टीटू के पास बहुत कम खिलौने हैं, फिर भी ऐसी शान लगाता है जैसे लाट साहब हो। उस दिन कैरम-बोर्ड दिखा-दिखाकर कितना इतरा रहा था। वह ममी से कहकर अपने लिए भी कैरम-बोर्ड खरीदेगा। और नहीं तो इस बार पापा आएँगे तो उनसे लेगा।

पिछली बार पापा जिस दिन आए थे, उसी दिन उसका रिज़ल्ट निकला था।

कितने खुश हुए थे पापा उसका रिज़ल्ट देखकर ! खूब प्यार किया था, शाबाशी दी थी और ढेर सारी चीज़ें दिलवाई थीं।

इस बार कब आएँगे पापा ?

‘‘यह किधर चले ?’’ उसे पिछले दरवाज़े से बाहर जाते देख फूफी चिल्लाई।

‘‘मैं टीटू के यहाँ जा रहा हूँ, अभी आ जाऊँगा।’’

‘‘वहीं मत खेलने बैठ जाना, ममी गुस्सा होंगी नहीं तो। नहाया-धोया कुछ नहीं है।’’

बंटी दूर निकल आया। फूफी की तो आदत है, कुछ न कुछ बकते रहने की।

टीटू के घर के दरवाज़े पर आकर एक मिनट को झिझका। कहीं सबसे पहले टीटू की अम्मा ही न मिल जाए। कैसे बोलती हैं वे भी। एक दिन इसी तरह छुट्टी के दिन सवेरे-सवेरे आ गया था तो बोलीं, ‘‘आ गए बंटी। छुट्टी के दिन तो तुम्हारा सूरज भी इसी घर में उगता है और इसी घर में डूबता है।’’ तो मन हुआ था कि उलटे पैरों लौट जाए।

ममी तो टीटू को कभी ऐसे नहीं कहतीं, चाहे वह सारे दिन रह ले। उसका बस चले तो वह कभी टीटू के घर नहीं जाए। वैसे भी उसे अपने ही घर में खेलना अच्छा लगता है। फूफी कहती है–घर में काहे नहीं अच्छा लगेगा ? ऐसी लाट साहबी करने को और कहाँ मिलती है बच्चों को !

टीटू से कितना कहा कि तू ही आ जाया कर छुट्टी के दिन, पर शाम के पहले वह कभी आता ही नहीं। घर में ही खेलता रहता है...बिन्दा है, शन्नो है...हुँह। कहने दो कहती हैं तो। बंदूक दिखाकर अभी लौट भी जाऊँगा। मैं वहाँ रुकूँगा ही नहीं। और सूरज तो अब कभी का उग गया।

बरामदे में ही टीटू की अम्मा बैठी तरकारी काट रही हैं। क्षण-भर को पाँव ठिठक गए। न भीतर को जाते बना, न लौटते।

‘‘कौन, बंटी ! आओ। अरे बड़ी ज़ोरदार बंदूक ले रखी है। इत्ती बड़ी किसने दिलवाई ?’’

‘‘पापा ने।’’

‘‘ऐं ! आए थे क्या पापा ?’’

‘‘नहीं, किसी के साथ भिजवाई थी।’’ एकाएक स्वर की खुशी जैसे बुझ गई। मन हुआ अम्मा के सीने में ही दाग दे बंदूक। जब देखो तब वही बात।

बंटी भीतर दौड़ गया।

टीटू शन्नो के साथ बैठा-बैठा कैरम खेल रहा था। बंटी ने चुपचाप उसकी पीठ पर बंदूक की नली लगाई और ज़ोर से चिल्लाया, ‘‘हैंड्स अप !’’ टीटू एकदम डर गया तो बंटी खिलखिला पड़ा...‘‘कैसा डराया !’’

"अरे, इतनी बड़ी बंदूक, देखूँ ज़रा।" टीटू इतनी बड़ी बंदूक देखकर एकाएक उत्साह में आ गया।

"चल, बाहर चलकर निशाना लगाएँगे।" आज वह भी आसानी से बंदूक नहीं देगा। उस दिन कैरम को लेकर कैसा इतरा रहा था...हटो, हटो, तुम्हें खेलना नहीं आता।

"ऐ टीटू ! पहले खेल पूरा करके जाओ। हार रहा है तो कैसा भागने लगा।" जीतती हुई शन्नो ने कुरता पकड़कर उसे खींचा।

"ले खेल, और खेल।" टीटू ने दोनों हथेलियों से सारी गोटों को इधर-उधर छितरा दिया और बंटी को लेकर बाहर भाग गया।

"हारू-हारू..." खिसियाई-सी शन्नो चीखती रही।

मुग्ध भाव से बंदूक पर हाथ फेरते हुए टीटू ने कहा, "दिखा तो यार, ज़रा !"

"खाली देखने से काम नहीं चलेगा। समझना पड़ता है। यह कोई आठ आनेवाला तमंचा नहीं है, जो हर कोई चला ले।" बंटी अपने को महत्त्वपूर्ण महसूस करने लगा।

"अभी ख़रीदी है ?" बड़ी ललचाई-सी नज़रों से देखते हुए टीटू ने पूछा।

"नहीं, पापा ने भिजवाई है।" बड़े रौब से बंटी ने जवाब दिया और उसी रौब के साथ वह उसमें कारतूस भरने लगा।

"चल, तेरे पापा साथ नहीं रहते तब भी तेरे लिए चीज़ें तो खूब भेजते रहते हैं।"

"और क्या ? इस बार आएँगे तो मेरे लिए बड़ावाला मैकेनो लाएँगे। मैं तो ममी से जो माँगता हूँ, ममी भी झट दिलवा देती हैं।"

बंदूक हाथ में मिल जाती तब तो टीटू फिर भी बंटी के इस रौब को जैसे-तैसे झेल जाता। पर खाली बातों का रौब...

"क्यों रे बंटी, तेरा मन नहीं होता कि पापा तेरे साथ रहें ?" बंटी का कमज़ोर हिस्सा वह जानता है।

बंटी चुप। बस, बंदूक के घोड़े को ऊपर-नीचे करता रहा।

"जब यहाँ आते हैं तो तू कहता क्यों नहीं ?... पर अब शायद रह नहीं सकते !"

बंटी ने बड़े प्रश्नवाचक भाव से टीटू की ओर देखा।

"तेरे ममी-पापा में तलाक जो हो गया है।"

न चाहते हुए भी बंटी पूछ बैठा, "तलाक ? तलाक क्या होता है ?"

"तू नहीं जानता ? बुद्धू कहीं का। ममी-पापा की जो लड़ाई होती है न, उसे तलाक कहते हैं।"

"तुझे कैसे मालूम ?"

"मेरी अम्मा बता रही थीं, पापा बता रहे थे।"

बंटी तब भीतर ही भीतर कहीं अपमानित हो आया।

ठाँय ! ठाँय ! वह हवा में बंदूक दागने लगा। और टीटू को अपनी बंदूक से पूरी तरह चकित करके, बिना एक बार भी उसे चलाने का अवसर दिए वापस लौट आया।

मन में जाने कैसा गुस्सा उफन रहा था। उसके ममी-पापा की बात उसे नहीं मालूम और टीटू को मालूम ! पापा साथ नहीं रहते तो क्या हुआ, वे तो शुरू से ही साथ नहीं रहते। वह तो हमेशा से ही ममी के पास रहता है। उसकी ममी कोई ऐसी-वैसी हैं ? कॉलेज की प्रिंसिपल हैं, आते-जाते लोग कैसे सलाम ठोंकते हैं। करेगा कोई ऐसे सलाम इनकी अम्मा को ?

और पापा पास नहीं रहते तो क्या हुआ ? उसे प्यार तो ख़ूब करते हैं। टीटू के पापा तो जब देखो तब डाँटते ही रहते हैं। उस दिन उसके सामने ही कैसा कान उमेठा था कि पें बोल गई। सारा चेहरा सुर्ख़ हो आया। अच्छा है, पापा के साथ रहो, डाँट खाओ, पिटो और कान खिंचवाओ।

पर ममी को तो ऐसा नहीं करना चाहिए न ? ममी उसे पापा की बात बताती क्यों नहीं हैं ? कितनी ही बार उसने ममी से यह बात करनी चाही, पर जब भी वह ऐसी बात करता है, ममी का चेहरा जाने कैसा-कैसा हो जाता है। उसे डर-सा लगने लगता है। फिर उससे कुछ भी नहीं पूछा जाता।

इस बार पापा आएँगे तो वह पापा से पूछेगा कि वे दोनों दोस्ती क्यों नहीं कर लेते ? पापा तो उसकी बात बहुत मानते हैं; जहाँ कहता है, वहीं घुमाने ले जाते हैं। जो माँगता है, वही दिला देते हैं। यह बात नहीं मानेंगे ! अब तो वह बड़ा हो गया है, पापा को समझा सकता है।

पर ममी-पापा की लड़ाई क्यों हुई ? ममी कभी पापा की बात नहीं करतीं। पापा आते हैं तो सरकिट हाउस में ठहरते हैं। ममी को बुलाते भी नहीं, ममी की बात भी नहीं करते। क्या इतने बड़े-बड़े लोग भी लड़ते हैं ? ऐसी लड़ाई, जिसमें कभी दोस्ती ही न हो। क्या ममी को पापा की याद नहीं आती होगी ?

शाम को ममी लॉन में पलंग डालकर लेटी हैं। मौसम में हलकी-सी ठंडक है, पर फिर भी बाहर खूब अच्छा लग रहा है। ममी की छाती पर एक खुली हुई किताब उलटी रखी है। आसमान में जाने क्या देख रही हैं ममी ! बंटी दौड़-दौड़कर क्यारियों में पानी डाल रहा है ! टीटू पाइप लेकर पौधे धो रहा है। धुलकर पत्तियाँ कैसी चटकीली हो उठती हैं। रातरानी की महक धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगी

है। हर पौधे, हर फूल और हर गंध के साथ बंटी का जैसे बड़ा गहरा संबंध है।

पानी दे चुकने के बाद बंटी ने एक बड़ा-सा मोगरे का फूल तोड़ा। इस बगीचे में से फूल तोड़ने का अधिकार केवल बंटी का है क्योंकि यह बगीचा केवल उसी का है। बिना उससे पूछे तो ममी भी नहीं तोड़ सकतीं।

फूल लेकर वह चुपचाप गया और लेटी हुई ममी के बालों में खोंस दिया। ममी बड़ा मीठा-सा मुसकराईं और पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया।

"लाड़ कर रहा है ममी का ?" और बैठकर फूल को ठीक से पीछे की ओर लगा लिया।

इस समय ममी कितनी अच्छी लग रही हैं। वैसे तो शाम के समय ममी बिलकुल उसकी अपनी हो जाती हैं। बालों की खूब ढीली-ढाली चोटी और चेहरा भी एकदम मुलायम-सा। कोई तनाव नहीं, कोई सख़्ती नहीं। हमेशा ही इस समय बंटी को ममी बहुत अच्छी लगती हैं। बहुत सुंदर भी। कभी-कभी वह ममी की नज़र बचाकर एकटक ममी को देखता रहता है। ममी की ठोड़ी का तिल उसे बहुत अच्छा लगता है। रात में पास लेटता है तो अकसर उस पर धीरे-धीरे उँगली फिराता रहता है।

उसे आज भी याद है। पहली बार जब उसने ऐसा किया था तो ममी जैसे चौंक गई थीं। एकदम उसका हाथ हटा दिया था और बड़ी देर तक उसके चेहरे पर जाने क्या देखती रही थीं। अजीब-अजीब नज़रों से। फिर एक गहरी साँस छोड़कर वे छत की ओर देखने लगी थीं। उनका चेहरा न जाने क्यों बड़ा उदास और बेजान हो आया था। वह जैसे भीतर ही भीतर सहम गया था। उसकी समझ में ही नहीं आया कि आख़िर उसने ऐसा क्या कर दिया, जो ममी इतनी उदास हो गईं और उसने तय कर लिया कि अब वह कभी तिल पर हाथ नहीं रखेगा।

पर तीन-चार दिन बाद ममी ने ख़ुद ही उसकी उँगली लेकर तिल पर रख दी, "फिरा, मुझे अच्छा लगता है।" और हँसने लगीं।

ममी भी सचमुच अजीब हैं, इन्हें कभी-कभी कुछ हो जाता है।

आज रात में तिल पर उँगली फेर-फेरकर ही बात करेगा, पापावाली बात। अब वह सब समझता है। हिस्ट्री में रामायण-महाभारत की लड़ाई की बात समझ ली, ममी-पापा की लड़ाई की बात नहीं समझ सकता ? ममी बताएँ तो ! टीटू के अम्मा-पापा उसे सब बता सकते हैं और ममी उसे नहीं बता सकतीं ?

सवेरे की कचोट जैसे फिर ताज़ी हो गई। टीटू को दिखाते हुए बंटी ममी के गले से झूम गया। लो, देख लो, ममी कैसा दुलार करती हैं मेरा। तुम झूमो तो ज़रा अपनी अम्मा के गले में। न झटककर अलग कर दें तो। न रहें पापा उसके पास, उससे क्या ? ममी अकेली जितना प्यार करती हैं उसे, तुम्हारे अम्मा-पापा

मिलकर भी उतना प्यार नहीं कर सकते।

और उसकी आँखों के सामने खटिया पर नंगे-बदन बैठे, कभी खाँसते तो कभी पेट पर हाथ फेरते टीटू के पापा और हल्दी के दागों से भरी साड़ी पहने अम्मा घूम गईं।

तब मन एक गर्वयुक्त तृप्ति से भर गया। हुलसकर उसने कहा, ''ममी, आज बहुत-बहुत लंबीवाली कहानी सुनाओ।''

कहानी चल रही है, सात भाई चम्पा की। सौतेली माँ ने कैसे सातों लड़कों को मरवाकर गड़वा दिया। जहाँ-जहाँ बच्चे गाड़े गए वहाँ-वहाँ चम्पा का एक-एक पेड़ उग आया।

''सौतेली माँ बहुत बुरी होती है ममी ?''

''हाँ और नहीं तो क्या ? मारकर गड़वा देती है।''

''बच्चों के पापा ने क्यों नहीं कुछ कहा ?''

''सौतेली माँ ने उन्हें पता ही नहीं लगने दिया।''

''हुँह ! ऐसा भी कभी हो सकता है ? झूठ ! सात बच्चे गायब हो जाएँ और पापा को पता ही नहीं लगे !''

''हाँ होता है ऐसा। पापा कोई ऐसा-वैसा आदमी था ? राजा था। उसके पास राज्य के बहुत सारे काम थे...बच्चों का ख़याल ही नहीं रहा। पापा लोग ऐसे ही होते हैं। उन्हें बच्चों का ख़याल कभी रहता ही नहीं। यह तो माँ ही होती है, जो...''

और ममी एकाएक चुप हो गईं। उसने ममी की ओर देखा। ममी वैसे ही आसमान की ओर देख रही हैं। क्या देखती रहती हैं ममी आँखें गड़ाकर—कभी आसमान में, कभी छत में ? उसे तो वहाँ कभी कुछ नहीं दिखाई देता। एकाएक ख़याल आया, पापा की बात पूछ ले।

''ममी !''

''हूँ !''

बंटी पसोपेश में। कैसे पूछे ? ममी ने कहीं डाँट दिया या कि ममी बहुत उदास हो गईं तो ? शाम और रात में ही तो वह ममी के बहुत-बहुत पास हो जाता है। सवेरे तो इन्हीं ममी में से एक और ममी निकल आती हैं।

उसने एक बार फिर ममी की ओर देखा। आँखें आसमान पर टिकी हुईं। लटें चेहरे पर बिखरी हुईं। सचमुच ममी सुंदर हैं। वह बेकार ही क्यों डरने लगता है ममी से ! उसने हिम्मत जुटाकर कहा, ''ममी, ममी !''

इस बार ममी ऐसे चौंककर बोलीं जैसे कहीं और चली गईं थीं, ''चल, तू बहुत

बहस करता है, मैं नहीं सुनाती तुझे कहानी।''

''ममी, पापा हम लोगों के साथ क्यों नहीं रहते ?''

ममी चुप !

''आज टीटू कह रहा था...''

''क्या कह रहा था टीटू ?'' ममी एकदम बंटी पर झुक आईं। आवाज़ की सख़्ती से बंटी जैसे एक क्षण को सहम गया।

''बता क्या कह रहा था टीटू ?...''

''टीटू कह रहा था कि तेरे ममी-पापा का तलाक हो गया है। अब पापा कभी हमारे साथ नहीं रह सकते।'' बंटी ने जैसे-तैसे कह दिया।

''क्यों रे, तू और टीटू ये ही सब बातें करते रहते हो ?'' ममी की आवाज़ में गुस्सा था या दुख, पता नहीं चला।

''मैं नहीं करता ममी, टीटू ही कह रहा था। मुझे तो तलाक का मतलब भी नहीं मालूम। उसी ने बताया कि ममी-पापा की लड़ाई को तलाक कहते हैं। जब देखो, उनके घरवाले पापा की बात ज़रूर करते हैं।''

बंटी रुआँसा हो आया।

ममी एकाएक ढीली हो आईं। ठंडी साँस खींचकर बोलीं, ''करने दो। इन लोगों के पास ये बातें न हों तो ये जिएँ कैसे बेचारे ?'' फिर बंटी को अपने पास खींचती हुई बोलीं, ''पापा नहीं रहते तो क्या, मैं तो हूँ तेरे पास।''

और उसके बाद बंटी से कुछ भी नहीं पूछा गया, कुछ भी नहीं कहा गया। ममी उसे कितना ही प्यार करें फिर भी वह ममी से कहीं डरता ज़रूर है। कितनी बातें सोची थीं उसने आज कहने के लिए। दिन में कई बार दोहरा-दोहराकर भी देख लिया था। पर हमेशा की तरह बात बीच में ही टूट गई।

ममी चुप-चुप उसके बालों और गालों पर उँगलियाँ फिराने लगीं। दोनों चुप हो गए तो दूर लेटी फूफी की आवाज़ ही हवा में थिरकती रही। उखड़ा-बिखरा स्वर, ''मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई...''

''हवा में ठंडक बढ़ गई, चल, भीतर चल !'' और बंटी ममी के पीछे-पीछे अंदर चला गया।

बाहर था तो जैसे मन के सारे प्रश्न चारों ओर फैले हुए थे। कमरे में आते ही सब सिमटकर मन में समा गए और बंटी को एक अजीब-सी बेचैनी होने लगी।

कैसे पूछे वह ? क्यों नहीं बतातीं ममी उसे कुछ ?

अच्छा, ममी को क्या कभी भी पापा की याद नहीं आती ? वह तो टीटू या कुन्नी से अगर लड़ाई कर लेता है तो दो-तीन दिन तो बिना बोले रह लेता है।

अकेला-अकेला खेलता रहता है, पर उसके बाद तो ऐसा जी घबराने लगता है कि बोले बिना रहा ही नहीं जाता। कुछ न कुछ बहाना निकालकर फिर दोस्ती कर लेता है। अकेला-अकेला खेले भी कितने दिन तक आखिर ?

पर मम्मी तो हमेशा से ही अकेली रह रही हैं। तलाक में फिर क्या दोस्ती हो ही नहीं सकती ? किससे पूछे ?

कल टीटू से ही पूछेगा। टीटू अगर तलाक की बात जानता है तो तलाक की दोस्ती की बात भी जरूर जानता होगा।

# दो

शनिवार को ममी लंच के बाद कॉलेज नहीं जातीं।

खाना खाकर ममी उठीं और सोने के कमरे के सारे परदे खींच दिए। कमरे में हलका-सा अँधेरा हो गया। अभी तो उतनी गरमी नहीं है, वरना ममी रोशनदानों में भी काले या भूरे काग़ज़ चिपकवा देती हैं। गरमी में उन्हें रोशनी बिलकुल अच्छी नहीं लगती। और बंटी है कि उसका अँधेरे में जैसे जी घबराता है।

अँधेरा यानी कि सोओ। रात-भर अँधेरा रहता है और रात-भर वह सोता भी है। अब दिन में भी अँधेरा कर दोगे तो कोई रात थोड़े ही हो जाएगी। और रात नहीं तो सोए कैसे ? पर ममी सुनती हैं कोई बात ?

"बंटी, चलो सोओ !" और पकड़कर पलंग पर डाल देती हैं।

बंटी जानता है कि कुछ भी कहना-सुनना बेकार है, इसलिए जैसे ही ममी ने परदे खींचे, चुपचाप आकर पलंग पर लेट गया। जब तक आँखें खुली हैं, नज़र कमरे की दीवारों में कैद है, पर आँख बंद करते ही जैसे सारी सीमाएँ टूट जाती हैं और न जाने कहाँ-कहाँ के जंगल, पहाड़ और समुद्र तैर आते हैं आँखों के सामने। परीलोक की परियाँ और पाताललोक की नाग-कन्याएँ तैरती हुईं उसके सामने से निकल जाती हैं।

अच्छा, अगर कोई उसे जादू के पंख या उड़नेवाला घोड़ा दे दे तो वह क्या करे ? एकदम पापा के पास चला जाए और उन्हें चौंका दे। अचानक उसे आया देख पापा कितने खुश हो जाएँगे। इधर ममी ढूँढ़-ढूँढ़कर परेशान। बाहर देखेंगी, टीटू के घर में जाएँगी, कुन्नी के घर जाएँगी, फूफी सारे में दौड़ती फिरेगी और वह जादू की टोपी पहने सबकुछ देखता रहेगा...परेशान होती ममी को, इधर-उधर दौड़ती हुई बौखलाई-सी फूफी को। और जब ममी रो पड़ेंगी तो झट से टोपी उतारकर उनके गले में लिपट जाएगा।

पर ये सब चीज़ें मिलती कहाँ हैं ? सारी कहानियों में इनकी बातें हैं, पर किसी ने भी यह नहीं लिखा कि ये मिलती कहाँ हैं। कोई साधू मिल जाए तो बता सकता है या उसके पास भी ऐसी चीज़ें हो सकती हैं।

ममी सो गईं। एक क्षण बंटी ममी को देखता रहा...कहीं पलकें हिल तो नहीं रहीं। तभी ख़याल आया, सोती हुई ममी कितनी अच्छी लगती हैं। अच्छा, ममी तरह-तरह की कैसे हो जाया करती हैं ? टीटू की अम्मा को तो कभी भी जाकर देख लो, हमेशा एक-सी रहती हैं, फूफी भी।

बंटी दबे पाँव पलंग से उतरा। धीरे से कमरे के बाहर निकला और दौड़कर करोंदे की झाड़ियों के पास पहुँच गया। कुन्नी ने कहा था कि बंटी अगर उसे खूब सारे करोंदे तोड़कर देगा तो वह बंटी को करोंदे की माला बनाकर देगी, खूब सुंदर-सी।

टीटू भी आ जाता तो दोनों मिलकर तोड़ते, पर वह बुलाने तो नहीं ही जाएगा। वहाँ उसकी अम्मा मिल गईं तो बस, कबाड़ा। कोई बात नहीं, वह अकेला ही तोड़ेगा।

अचानक लोहे का फाटक बजा तो बंटी घूम पड़ा, "अरे, वकील चाचा !" पसीने में सराबोर वकील चाचा एक तरह से हाँफते हुए अपनी पतली-सी छड़ी हिलाते हुए चले आ रहे थे।

चिपचिपाते हाथों को कमीज़ से ही पोंछता हुआ बंटी दौड़ा और वकील चाचा की बाँह से झूल गया।

"आप कब आए चाचा ?"

"क्यों रे, तू ऐसी भरी धूप में यहाँ करोंदे तोड़ रहा है ?"

"धूप ! कहाँ, मुझे तो नहीं लग रही।" बंटी दुष्टता से हँस रहा है।

"हाँ, धूप कहाँ, यह तो चाँदनी है न ? शैतान कहीं का ! शकुन घर में है या कॉलेज ?"

"शनिवार को तो एक बजे ही छुट्टी हो जाती है कॉलेज की। भीतर सो रही हैं।" और फिर 'ममी—ओ ममी, वकील चाचा आए हैं' के बिगुल नाद के साथ ही बंटी चाचा को लेकर भीतर घुसा।

भरी नींद में से ममी उठीं और वकील चाचा को सामने देखकर जैसे एकदम सिटपिटा गईं। साड़ी ठीक करके उठती हुई बोलीं, "अरे आप कब आए ?"

"यह बंटी वहाँ करोंदे तोड़ रहा था ऐसी धूप में।"

"ममी पूछ रही हैं, आप कब आए ? पहले उनकी बात का तो जवाब दीजिए।"

"तू बड़ा तेज़ हो गया है।" वकील चाचा ने अपनी टोपी उतारकर मेज़ पर रखी और ठीक पंखे के नीचे बैठे गए। अभी तो ज़रा भी गरमी नहीं है और चाचा के इतना पसीना ! "तुम्हारे यहाँ आज आया हूँ तो समझ लो शहर में आज ही आया हूँ।"

"क्यों रे, तू उठकर फिर करोंदे तोड़ने चला गया। तुझे नींद नहीं आती तो फिर पढ़ता क्यों नहीं ? इम्तिहान नहीं पास आ रहे ! आँख लगी नहीं कि गायब !"

ममी सचमुच ही गुस्सा होने लगीं। पर बंटी है कि अभी भी हँस रहा है। चाचा इस समय कवच की तरह उसके सामने बैठे हैं। ममी का गुस्सा बेकार।

"चाचा, आपको जितनी गरमी लग रही है, उससे तो लगता है कि आप ठंडा ही पिएँगे, बोलिए क्या लाऊँ ?"

चाचा की आँखों में एकाएक लाड़ उमड़ आया, "बड़ी ख़ातिर करना सीख गया। तू तो एकदम ही बड़ा और समझदार हो गया लगता है।"

"मैं अभी आई।" कहकर ममी अंदर चली गईं। शायद मुँह धोने या चाचा के लिए कुछ लाने !

बंटी धीरे-से सरककर चाचा के पास आया और उनकी कुर्सी के हत्थे पर बैठता हुआ बोला, "चाचा, पापा कब आएँगे इस बार ?"

इस प्रश्न में पापा के बारे में जानने की इच्छा भी थी, साथ ही यह उत्सुकता भी कि पापा ने कुछ भेजा हो चाचा के साथ तो चाचा निकालें।

पता नहीं क्यों चाचा एकटक उसका चेहरा ही देखने लगे। घनी भौंहों के नीचे, कुछ अंदर को धँसी आँखें जाने कैसी गीली-गीली हो गईं। बड़े दुलार से, पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले, "पापा की याद आती है बेटे ?"

झेंपते हुए बंटी ने गरदन हिला दी।

बंटी को लगा जैसे चाचा कहीं उदास हो गए हैं। पीठ सहलाता हुआ उनका हाथ उसे काँपता-सा लगा। पापा की बात कहकर उसने कहीं ग़लती तो नहीं कर दी ? पता नहीं, जब भी वह पापा की बात करता है, सब कुछ गड़बड़ा जाता है। किससे करे वह पापा की बात ? किससे पूछे उनके बारे में ?

"पापा भी आएँगे बेटा, मैं जाकर उन्हें भेजूँगा।" चाचा का स्वर इतना बुझा-बुझा क्यों है ? वे तो हमेशा इतने ज़ोर-ज़ोर से बोलते हैं जैसे क्लास में पढ़ा रहे हों।

"मैं तो इस बार मिलकर भी नहीं आ सका, वरना ज़रूर तेरे लिए कुछ भेजते।"

और चाचा बड़े प्यार से उसकी पीठ सहलाने लगे। मानो कुछ न लाने की कमी वे प्यार से ही पूरी कर देंगे।

चाचा कुछ लाए भी नहीं, इस सूचना ने बंटी को और भी खिन्न कर दिया, वरना जब भी चाचा आते हैं, पापा उसके लिए ज़रूर कुछ न कुछ भेजते हैं और

शायद यही कारण है कि उसे चाचा अच्छे लगते हैं, चाचा का आना अच्छा लगता है।

"जो बंदूक तुम्हारे लिए भेजी थी, वह तुम्हें पसंद आई ?"

"बहुत अच्छी, बहुत ही अच्छी। आपने देखी थी ?" बंदूक के नाम से ही जैसे मरा हुआ उत्साह एक क्षण को जाग उठा।

"हमने साथ ही जाकर तो ख़रीदी थी।"

फिर चाचा यों ही कमरे में इधर-उधर देखने लगे।

"ये चित्र तुमने बनाए हैं ?"

दीवारों पर ममी ने उसकी पेंटिंग्स गत्ते पर चिपका-चिपकाकर लटका रखी हैं। तीन शीशे के फ्रेम में मढ़वा रखी हैं।

"हाँ।" बड़े गर्व से बंटी ने कहा, "स्कूल में मेरी और भी अच्छी-अच्छी रखी हैं। आर्ट-क्लब का चीफ़ हूँ..."

"अच्छा !" चाचा ने शाबाशी देते हुए उसकी पीठ थपथपाई और फिर जैसे कहीं से उदास हो गए। पर यह भी कोई उदास होने की बात हुई भला !

इतने में ममी घुसीं। हाथ में ट्रे लिए हुए। लगा, वह मुँह भी धोकर आई हैं। यों भी सोकर उठती हैं तो ममी का चेहरा बहुत ताज़ा-ताज़ा लगता है। चाचा को गिलास पकड़ाकर ममी सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गईं।

"तुम्हारा बेटा तो बड़ा गुनी है शकुन। कलाकार बनेगा। देखो न, इस उम्र में ही बड़ी अच्छी पेंटिंग्स बना रखी हैं।"

ममी ने उसे देखा क्या, जैसे लाड़ में नहला दिया। बंटी सोच रहा था, ममी उसकी तारीफ़ में कुछ और कहेंगी, पर फिर सब चुप हो गए।

हमेशा बोलते रहनेवाले चाचा भी चुप और चाचा के सामने चुप रहनेवाली ममी भी चुप। अँधेरा-अँधेरा कमरा और भीतर बैठे लोग चुप। जैसे एक अजीब-सी उदासी वहाँ उतर आई हो। चाचा कभी एक घूँट पीते हैं, कभी उसकी ओर देखते हैं तो कभी खिड़की की ओर। पर खिड़की तो बंद है, उस पर परदा पड़ा है। वहाँ तो देखने को कुछ है ही नहीं। ममी एकटक ज़मीन ही देखे जा रही हैं और वह है कि कभी ममी को देखता है तो कभी चाचा को।

"चाचीजी अच्छी हैं, बच्चे ?" आख़िर ममी ने पूछा।

"हूँ, ठीक हैं सब।" कुछ इस भाव से कहा मानो उन्हें इन सबमें कोई दिलचस्पी ही न हो।

"तुम गर्मियों की छुट्टियों में कहीं बाहर नहीं जा रहीं इस बार ?"

"नही, एक तो पहले से ही कहीं जगह का इंतज़ाम नहीं किया, यों भी इस बार यहीं रहने का इरादा है।"

ममी पापा की बात क्यों नहीं पूछ रहीं ? लड़ाई में क्या बात भी नहीं पूछते हैं ?

"कलकत्ते में तो अभी से गरमी शुरू हो गई होगी ? यहाँ शाम को तो अभी भी बहुत अच्छा रहता है और रात को ठंड रहती है।"

बातें कर रहे हैं, पर बंटी तक को लग रहा है कि जैसे कमरे का मौन नहीं टूट रहा है। उदासी नहीं छँट रही है। यह चाचा को क्या हो गया है ? वैसे तो चाचा जब भी आते हैं, उन्हें ममी से बहुत-बहुत बातें करनी रहती हैं। शाम को या दोपहर को आएँगे तो रात के पहले कभी नहीं जाएँगे और जब तक बैठेंगे लगातार कुछ न कुछ बोलते ही जाएँगे। अगर ममी थोड़ी देर को उठकर चली भी जाएँ तो चाचा उससे बातें करने लगेंगे। और कुछ नहीं तो उसका टेस्ट ही ले डालेंगे। टेबल पूछेंगे, स्पेलिंग पूछेंगे। चुप तो चाचा रह ही नहीं सकते। उन्हें इस तरह लगातार बोलते देखकर बंटी को ख़याल आता, अगर इन्हें कभी क्लास में बैठना पड़े तो ? बाप-रे-बाप ! सारा दिन सज़ा खाते ही बीते। मुँह पर उँगली रखे खड़े हैं या कि मुँह पर डस्टर बाँधे बैठे हैं।

उसने पिछली बार यह बात ममी को बताई तो हँसते हुए उसका कान खींचकर कहा था, "यही सब सोचता रहता है बड़ों के बारे में ?...और फिर देर तक हँसती रही थीं। मुँह पर डस्टर बँधे चाचा की कल्पना में वह ख़ुद हँस-हँसकर दोहरा होता रहा था।

वही चाचा आज चुप हैं। चुप ही नहीं, उदास भी हैं।

"आप कितने दिन हैं यहाँ पर ?"

"परसों की तारीख़ है। बस उसी दिन शाम को चला जाऊँगा।" फिर एक क्षण ठहरकर बोले, "तुमसे कुछ बातें करनी थीं, तो सोचा कि एक दिन हाथ में होगा तो ठीक रहेगा।"

ममी की आँखें चाचा के चेहरे पर टिक गईं। हज़ारों सवाल उन आँखों में झलक आए। चेहरे पर एक अजीब-सा तनाव आने लगा। बंटी के मन में जाने कैसा-कैसा डर-सा समाने लगा।

पहले वह कुछ भी जानता-समझता नहीं था। जानने-समझने की कोई इच्छा भी नहीं थी। पर अब जानने लगा है। और जितना जानता है, उससे बहुत ज़्यादा जानने की इच्छा है, बल्कि सब कुछ जान लेने की इच्छा है। उसे मालूम है कि चाचा पापा के पास से आते हैं, और आने पर पापा की ही बातें करते हैं। क्या बातें करते रहे हैं, उसे नहीं मालूम। उसने कभी सुनने की कोशिश ही नहीं की। पर इस बार ज़रूर सुनेगा।

हाँ, इतना उसे ज़रूर मालूम है कि चाचा एक-दो दिन के लिए आकर ममी

को दस-बारह दिनों के लिए बदल जाते हैं। कभी-कभी तो ममी इतनी उदास हो जाया करती थीं कि उनसे बात करना भी बंद कर देती थीं। साथ सुलाकर भी न उसे प्यार से सहलातीं, न कहानी सुनातीं।

पर पिछली बार ममी बहुत खुश हुई थीं, इतनी खुश कि बिना बात ही उसे बाँहों में भर-भरकर प्यार करती रही थीं।

तब बंटी को शक हुआ था कि चाचा की छड़ी में तो कोई जादू नहीं है ! ममी पर फेरकर चले गए और ममी बदल गईं। तब उसने चुपचाप छड़ी को अपने ऊपर फिराकर देखा था, फूफी पर भी फिराकर देखा था, पर उनको तो कुछ नहीं हुआ। नहीं, छड़ी में नहीं, चाचा की बात में ही कुछ होता है।

आज पता नहीं कैसी बात करेंगे ? उसके बाद ममी खुश होंगी या उदास ? इस बार वह सारी बात ध्यान से सुनेगा।

उसने एक उड़ती-सी नज़र ममी पर डाली। ममी की आँखें वैसे ही चाचा पर टिकी हुई हैं। आँखों में वैसे ही सवाल झूल रहे हैं। पर चाचा हैं कि चुप। बोलते क्यों नहीं ? बात करनी है तो करें बात। वहाँ खिड़की में क्या देखे जा रहे हैं ? बात वहाँ तो लिखी हुई नहीं है।

''शकुन !'' चाचा बोले नहीं, जैसे शब्दों को किसी तरह ठेला। कैसी मरी-मरी आवाज़ निकल रही है आज उनकी।

टकटकी लगाए-लगाए ममी की आँखें जैसे पथरा गई हैं। बस मूर्ति की तरह वे बैठी हैं, मानो साँस भी नहीं ले रही हों।

''वह चाहता है कि अब इस सारी बात की कानूनी कार्यवाही भी कर ही डाली जाए।'' चाचा का स्वर कैसा बिखर-बिखर रहा है।

यही बात कहनी थी चाचा को ? पर इसका मतलब ? 'वह' तो पापा हैं, बात भी पापा की ही है, पर क्या है, कुछ भी समझ में नहीं आया।

''तो क्या इसीलिए आपको यहाँ भेजा है ?'' ममी का चेहरा ही नहीं, उनकी आवाज़ भी सख़्त हो गई है, वही प्रिंसिपलवाला चेहरा।

''नहीं-नहीं, मैं तो अपने काम से आया था। पर जब आने लगा तो उसने मुझे तुमसे इस विषय में बात करने को कहा था। मैं नहीं आता तो वह ख़ुद शायद तुम्हें लिखता।

इसका मतलब चाचा मिलकर आए हैं पापा से और अभी-अभी उससे कहा था कि आने से पहले मिला नहीं। चाचा इतने बड़े होकर भी झूठ बोलते हैं। उसे बड़ों की बात के बीच में नहीं बोलना चाहिए, वरना वह अभी पूछता।

चाचा ने शरीर ढीला छोड़कर पीठ कुर्सी पर टिका दी और आँखें मूँद लीं, जैसे बहुत-बहुत थक गए हों।

बस, हो गई बात, इतनी-सी बात करने आए थे ? हुँह ! यह भी कोई बात हुई भला !

"आप कुछ देर आराम कर लीजिए। रात के सफ़र की थकान भी होगी। बाकी बातें शाम को हो जाएँगी। ऐसी कौन-सी नई बात करनी है।" वाक्य का अंतिम हिस्सा ममी ने जैसे अपने-आपसे कहा और बिना चाचा का उत्तर पाए ही अलमारी खोलकर एक चादर निकाली और ड्राइंग-रूम के दीवान पर बिछा दी।

"चलिए, जाकर लेट जाइए।" ममी ने ऐसे कहा जैसे बंटी को कह रही हों। और चाचा भी बिलकुल चुपचाप उठकर चले गए। पता नहीं वे सचमुच ही थके हुए थे या पता नहीं वे जैसे बात टालना चाह रहे थे।

"और तू सोता क्यों नहीं है ? यहाँ बैठकर गुटर-गुटर बातें सुन रहा है। भरी दोपहर में भी तुझे नींद नहीं आती।"

बंटी उछलकर पलंग में दुबक गया। पर नींद का कोई प्रश्न ही नहीं। ममी की ओर देखकर पूछा, "चाचा क्या कहते थे ममी ?"

ममी ने ऐसी चुभती नज़रों से उसे देखा कि वह भीतर तक सहम गया और खट से उसने आँखें बंद कर लीं। पर बंद आँखों से भी वह उस चुभन को महसूस करता रहा। फिर बंद आँखों से ही उसने जाना कि ममी भी उसकी बग़ल में आकर लेट गई हैं। अब सबको सुलाकर ममी जागती रहेंगी।

चाचा की कही हुई बात क्या बहुत बुरी थी ? अनायास ही ममी की उँगलियाँ उसके बालों को सहलाने लगीं, काँपती-थिरकती उँगलियाँ। उन उँगलियों के पोरों में से झर-झरकर जाने कैसा स्नेह बंटी की नसों में दौड़ने लगा कि मन में थोड़ी देर पहले जो भय समाया था, वह अपने-आप ही धीरे-धीरे बह गया। स्पर्श से ही वह जान गया कि अब तक ममी के चेहरे की वह सख़्ती भी ज़रूर पिघल गई होगी।

उसने धीरे-से आँखें खोलीं। ममी हमेशा की तरह छत की ओर देख रही थीं। आँख से शायद अभी-अभी झरा आँसू कनपटी को भिगोता हुआ बालों की लट में लटका था। ममी का आँसू। ममी को उसने उदास होते देखा है, गुस्सा होते और डाँटते हुए भी देखा है, पर रोते हुए कभी नहीं देखा।

चाचा ने शायद कोई बहुत ही खराब बात कह दी है। चाचा को लेकर उसके मन में एक अजीब तरह का आक्रोश घुलने लगा। एक तो कुछ लाए नहीं, फिर झूठ बोला और अब कोई गंदी-सी बात कहकर ममी को...

ममी शायद बहुत दुखी हैं। जैसे भी होगा वह ममी के दुख को दूर करेगा। ये लोग सारी बात बताएँगे तो ठीक है, नहीं तो ख़ुद पता लगाएगा। माँ का दुख दूर करनेवाले राजकुमार तो कैसे कठिन-कठिन काम करते थे।

वह सरककर ममी से और सट गया। फिर अपनी छोटी-सी बाँह ममी के गले

में डालकर बोला, बहुत आग्रह के साथ, बहुत मनुहार के साथ, "मुझे बताओ न ममी, चाचा ने क्या कहा ?"

"तू सोएगा नहीं बंटी !" उदासी में भी ममी ने ऐसे कड़ककर कहा कि बंटी ने चुपचाप आँखें मूँद लीं।

ढेर-ढेर प्रश्नों का, ढेर-ढेर कौतूहल का सागर उसके चारों ओर उमड़ने लगा, जिसमें वह डूबता ही चला गया, गहरे और गहरे। और फिर पता नहीं उसे कब नींद आ गई।

धूप ढल गई तो ममी और चाचा लॉन में आ बैठे। वह जब से जगा है इन लोगों के आसपास ही मंडरा रहा है। आज जैसे भी हो उसे सारी बात जाननी है, पर चाचा उस तरह की कोई बात ही नहीं कर रहे। उसकी पढ़ाई की बात, ममी के कॉलेज की बात और दुनिया-भर की बातें कर रहे हैं, पर जो बात करने आए हैं, बस वही नहीं कर रहे। शायद वह बैठा है, इसलिए, पर वह जाएगा भी नहीं, बैठे रहें रात तक। रात को वह आँख मूँदकर सोने का बहाना करके पड़ा रहेगा और सारी बातें सुन लेगा।

"बंटी बेटे, तुम शाम को खेलते-वेलते नहीं हो ? अच्छा ज़रा बताओ तो, कौन-कौन से खेल आते हैं तुम्हें ?"

खेल-वेल ! सीधे से क्यों नहीं कहते कि यहाँ से चलते बनो। ठीक है, मैं चला ही जाता हूँ। मेरा क्या है, मत बताओ मुझे। ममी भी ऐसे देख रही हैं, मानो मेरे जाने का इंतज़ार कर रही हों।

बंटी बिना एक शब्द भी बोले भीतर आ गया। पर मन उसका जैसे वहीं अटका रह गया। नहीं, वह ज़रूर सुनेगा।

मेहंदी की मेड़ के किनारे-किनारे घुटनों के बल चलकर वह फिर वहीं आ गया। चाचा की कुर्सी के पीछे मोरपंखी का जो पौधा है, उसके पीछे दुबककर बैठ जाए तो कम से कम चाचा की बात तो सुन ही सकेगा। बात तो उन्हें ही करनी है। कहीं ममी या चाचा ने देख लिया तो ? बाप रे ! इस बात से ही मन भीतर तक काँप गया। तभी भीतर से मन ने धिक्कारा—बस, इसी बूते पर कुछ करना चाहते हो। राजकुमार तो राक्षसों के महलों तक में घुस गए, बड़ी-बड़ी मुसीबतें उठा लीं और तुम कुर्सी के पीछे तक नहीं जा सकते। आख़िर हिम्मत करके, बिना ज़रा भी आवाज़ किए, पहले मोरपंखी के घने-घने पौधों के पीछे आया और फिर सरककर चाचा की कुर्सी के पीछे। कुछ बड़ा काम कर डालने का संतोष भी मन में था और कुछ बुरा काम करने का डर भी पर नहीं, ममी का दुख दूर करने के लिए शायद सभी को सभी तरह के काम करने पड़ते हैं। यह ममी का काम है,

अच्छा काम !

मम्मी कुछ बोल रही हैं शायद ! कितना धीरे बोलती हैं मम्मी ! कुछ भी तो सुनाई नहीं दे रहा। नहीं, शायद कोई कुछ बोल ही नहीं रहा। अजीब बात है !

"शकुन !" ठीक है, खूब साफ़ सुनाई दे रहा है। पर चाचा रुक क्यों गए ? फिर सब चुप !

"शकुन ज़िंदगी चाहने का नाम नहीं..." लो अब आवाज़ इतनी धीरे कर दी कि ठीक से कुछ सुनाई नहीं दे रहा। बार-बार ज़िंदगी-ज़िंदगी कर रहे हैं, पापा की बात ही नहीं कर रहे।

बंटी थोड़ा और पास सरका। अब शायद मम्मी बोल रही हैं। खूब धीरे बोल रही हैं फिर भी सुनाई दे रहा है। अपनी मम्मी की तो धीरे से धीरे कही हुई बात भी वह सुन सकता है, समझ सकता है। "उम्मीद का तो प्रश्न ही नहीं उठता वकील चाचा। उम्मीद तो न पहले थी, न अब है।"

"नहीं ! ऐसी बात नहीं है। शुरू के तीन-चार साल तक तो मुझे बहुत उम्मीद थी, ख़ासकर बंटी के प्रति उसका रुख़ देखकर। बच्चे..."

पता नहीं बीच-बीच में क्या बोलते जा रहे हैं। मेरे बारे में बोलते-बोलते सीमेंट की बात करने लगे। एकाएक ख़याल आया टीटू को ले आता, वह शायद सारी बात समझ लेता। पर नहीं, अपने घर की बात सबको नहीं बतानी चाहिए।

"मीरा के साथ तो उसका खूब अच्छा है। यू नो शी इज़..."

अब बीच में पता नहीं यह किसकी बात घुसा दी। चाचा को कभी इम्तिहान देना हो तो एकदम अंडा। लिखना है कुछ और आप इधर-उधर का लिख रहे हैं।

मम्मी तो शायद कुछ बोल ही नहीं रहीं। ये बोलने ही नहीं देंगे। दोपहर में तो गरमी और थकान के मारे शायद बोलती बंद हो रही थी...अब तो फिर पहले की तरह चालू हो गए। भले ही बोलें, पर ऐसी बात तो बोलें, जो समझ में आए।

तभी मम्मी की आवाज़ सुनाई दी। बात तो कुछ समझ में नहीं आ रही, बस, यह पता लग रहा है कि आवाज़ खूब सख़्त है ! चेहरा भी ज़रूर सख़्त हो गया होगा। मन हुआ एक बार देख ही ले। पीछे बैठते समय जो डर लग रहा था वह धीरे-धीरे दूर हो गया था और अब जैसे हौसला बढ़ रहा था। वह कुर्सी से एकदम सट गया।

"मैं क्या जानता नहीं, इसीलिए तो कह भी दिया। कोई और होता तो कभी बीच में नहीं पड़ता। अजय ने दस्तख़त करके फार्म दे दिया है। कल तुम भी उस पर दस्तख़त कर देना। मैं कचहरी में जमा करके जल्दी ही कोई तारीख़ देने के..."

धत्तेरे की ! ये वकील चाचा भी एक ही घनचक्कर हैं। पापा-मम्मी की बात

के बीच में भी अपनी कचहरी-तारीख़ ज़रूर लगाएँगे। वकील की दुम !

लो, अब कोई कुछ बोल ही नहीं रहा। दोनों गुमसुम होकर बैठ गए। बंटी का मन हुआ, वहाँ से सरक ले। ऐसे तो कुछ भी समझ में नहीं आएगा, जो कुछ पूछना है ममी से पूछेगा।

"क्या बताएँ कुछ भी समझ में नहीं आता। लगता है, जब एक बार धुरी गड़बड़ा जाती है तो फिर ज़िंदगी लड़खड़ा ही जाती है...फिर कुछ नहीं होता...कुछ भी नहीं..." और जाने कैसे अचानक चाचा का लंबा-सा हाथ पीछे को लटका और बंटी के सिर से टकरा गया। बंटी एकदम सकपका गया। ये चाचा भी अजीब हैं। बात करनी है, सीधी तरह से करो। इतना हाथ-पैर नचाने की क्या ज़रूरत है ?

"अरे यह क्या, बंटी ! तुम यहाँ क्या कर रहे थे ?"

बंटी को काटो तो खून नहीं।

"छिपकर बातें सुन रहे थे ?" चाचा ममी की ओर इस तरह देख रहे हैं जैसे बंटी नहीं, ममी चोरी करते हुए पकड़ ली गई हों।

बंटी ने नज़रें झुका लीं। ज़रूर ममी भी वैसी सख़्त नज़रों से उसे देख रही होंगी। उसकी हिम्मत नहीं हो रही है कि आँख उठाकर एक बार देख भी ले। उसकी आँखें ही नहीं, उसका सारा शरीर भी जैसे जहाँ का तहाँ जम गया। भीतर से बस एक धिक्कार उठ रही है, पता नहीं अपने लिए, पता नहीं चाचा के लिए।

"अच्छा है चाचा, मैं तो ख़ुद चाहती हूँ कि यह अब सब कुछ जान ले। आख़िर कब तक इससे छिपाकर रखा जा सकता है ! अब इसके मन में यह बात बहुत घुमड़ने लगी है आजकल !"

बंटी जैसे उबर आया। मन हुआ दौड़कर ममी के गले से लिपट जाए, कह दे चाचा को कि ममी तो उसे सब कुछ बताएँगी, क्या कर लेंगे आप।

"हाँ-हाँ, बताने-जानने को कौन मना करता है, पर ठीक से जाने। मेरा मतलब था, यह छिपकर सुनने की आदत ठीक नहीं है।" फिर आवाज़ को बहुत मुलायम बनाकर बोले, "बंटी बेटे, जाओ खेलो, अच्छे बच्चे हर समय बड़ों के बीच में नहीं बैठते और बंटी तो बहुत अच्छा...क्लास में इतने अच्छे नंबरों से पास होता है, इतनी बढ़िया ड्राइंग करता है !"

बंटी ने फिर ममी की ओर देखा। शायद वे उसे अपने पास बैठने को ही कह दें।

"टीटू के साथ खेलने नहीं जाएगा बंटी ?" ममी ने बहुत धीमे से पूछा। ममी का चेहरा ही नहीं, ममी की आवाज़ भी बहुत उदास हो गई लगती है।

"मैं तो अपने पौधों को पानी दे रहा था, ममी !" रुआँसी-सी आवाज़ में बंटी ने एक बार जैसे अपने यहाँ रहने की सफ़ाई दी।

''अच्छा, पानी देते हो अपने पौधों को ? बहुत अच्छे बच्चे हो, शाबाश ! अब खेलने जाओ, अपने टीटी-वीटी के साथ खेलो।''

बंटी ने मन ही मन जीभ चिढ़ाया चाचा को। हुँह ! नाम तक तो लेना आता नहीं। टीटी हो गया।

और फिर वहाँ से तीर की तरह भाग गया, कुछ इस भाव और फुर्ती के साथ मानो उसे वहाँ बैठने की या कि उन दोनों के बीच की बातचीत सुनने-जानने की कोई इच्छा नहीं है, वह तो बस यों ही बैठ गया था। रखें, अपनी बात अपने पास।

दौड़ते हुए ही चाचा के अंतिम वाक्य को याद किया, ''जब धुरी गड़बड़ा जाती है तो ज़िंदगी लड़खड़ा जाती है।'' ज़रूर इस धुरी में ही कोई बात है, तभी तो उसे भगा दिया। धुरी का मतलब क्या होता है ? किससे पूछे ? टीटू से ही पूछेगा। टीटू सचमुच बहुत सारी ऐसी बातें जानता है, जो वह नहीं जानता। उसके अम्मा-पापा उसके सामने ही तो सारी ऐसी बातें करते हैं, इसलिए सब जानता भी है। धुरी भी ज़रूर जानता होगा।

टीटू गुलेल में कंकड़ लगाकर पेड़ पर बने घोंसले का निशाना साध रहा था।

''क्या कर रहा है ?''

''पापा ने कहा है, मुझे भी तेरे जैसी बंदूक दिलवा देंगे। बस, पहले मैं निशाना लगाना सीख जाऊँ। निशाना तो गुलेल से भी सीखा जा सकता है।''

''मैं तुझे अपनी बंदूक ही दे दूँगा, सीख लेना।'' इस समय कुछ अतिरिक्त रूप से उदार हो रहा है बंटी का मन।

''दे देगा ? चल तो ले आएँ।'' टीटू ने गुलेल में फँसे कंकड़ को लापरवाही के साथ तड़ाक से ज़मीन पर ही उछाल दिया।

''अभी नहीं। वकील चाचा आए हैं। ममी और उनमें कोई बात हो रही है, ज़रूरीवाली। अभी बच्चों को उधर नहीं जाना चाहिए।'' बड़े बुजुर्गी अंदाज़ में बंटी ने कहा।

''ऐ टीटू, एक बात बताएगा ?''

''क्या ?''

''धुरी का क्या मतलब होता है रे ? तू जानता है ?''

''धुरी ?'' टीटू सोचने लगा। फिर पूछा, ''पर क्यों ?''

''एक बात है। पर तू पहले मतलब बता। कोई बहुत गड़बड़ मतलब होना चाहिए।'' और बंटी की आँखों के सामने ममी का उदास चेहरा घूम गया। लगा जैसे जो कुछ गड़बड़ है, वह यहीं है और जैसे भी हो इसका मतलब जानना ही है।

''शब्द-अर्थ की कापी लाऊँ, शायद उसमें कहीं लिखा हो।'' फिर एकाएक बोला, ''बताऊँ, याद आ गया।'' बंटी की आँखें खुशी से चमक उठीं।

"वह एक लाइन है न यार—सब धन धूरि समान।"

"कौन-सी लाइन, मुझे तो नहीं मालूम !"

"तुझे कैसे मालूम होगा। तू जब चौथी में आएगा, तब तो पढ़ेगा !"

"तो मतलब क्या हुआ ?" बंटी जैसे कहीं से खिन्न हो आया।

"धूरि यानी धूल—मिट्टी समझा। एक बार पढ़ी हुई बात मैं कभी नहीं भूलता हूँ।"

पर टीटू के इस आत्मसंतोष से बंटी का मन हलका नहीं हुआ। मन ही मन दुहराया, जब एक बार धूल गड़बड़ा जाती है तो...धत् ! यह नहीं, कुछ और होना चाहिए।

"बात क्या है, तू बता न ?"

बंटी ने एक बार इधर-उधर देखा। फिर ज़रा पास सरककर बोला, "जब एक बार धुरी गड़बड़ा जाती है तो ज़िंदगी ही लड़खड़ा जाती है।" और फिर कुछ इस भाव से देखने लगा मानो कह रहा हो समझ लो, इतनी बड़ी बात है। बता सकते हो इसका अर्थ ?

"यह क्या हुआ ! धत् पागल है तू तो।"

"नहीं, पागल नहीं हूँ। बहुत बड़ी बात होती है यह। इतनी बड़ी कि मैं और तू तो समझ ही नहीं सकते। ममी-पापा लोगों की बात होती है। शायद उनकी लड़ाई की बात।"

और रात में जब सोया तो बार-बार मन हो रहा था कि ममी से इस बात का अर्थ पूछे। चाचा क्या बात कर गए हैं, सब पूछे। ममी ने तो ख़ुद बताने को कहा था। पर कुर्सी के पीछे छिप करके बैठने की हरकत से वह कहीं भीतर ही भीतर इतना सहमा हुआ था कि पूछने का साहस ही नहीं हुआ। सब कुछ जानने का यह कौतूहल उसके अपराध को और पुख़्ता ही करेगा। नहीं, उसे कुछ भी नहीं जानना।

पर बिना कुछ पूछे और जाने भी उसे बराबर लग रहा है कि कोई एक बहुत बड़ी गड़बड़ी है, जो उसके चारों ओर है, जो ममी के चारों ओर है, उस गड़बड़ी की बात बताने के लिए ही चाचा कलकत्ते से यहाँ आए हैं, ममी इतनी उदास हैं, पर अब किससे पूछे !

उसके पास भी जादू का लैंप होता तो घिसकर जिन्न को बुलाता और सब पूछ लेता। कैसे मिल सकता है जादू का लैंप !

और फिर धीरे-धीरे कहानियों का जादुई माहौल उसकी पलकों पर उतरने लगा और वह सो गया।

## तीन

शकुन के लिए समय जैसे एक लंबे अरसे से ठहर गया था। यों घड़ी की सुई तो बराबर ही चलती थी। रोज़ सवेरे पीछे के आँगन से घुसकर धूप सारे घर को चमकाती-दमकाती दोपहर को लॉन में फैल-पसरकर बैठ जाती और शाम को बड़ी अलसायी-सी धीरे-धीरे सरकती हुई पीछे की पहाड़ियों में छिप जाती। एक-दूसरे को ठेलते हुए मौसम भी आते ही रहे। फिर भी शकुन को लगता था कि समय जैसे ठहरकर जम गया है और जमे हुए समय की यह चट्टान न कहीं से पिघलती थी, न टूटती थी। बस, टूटती रही है तो शकुन—धीरे-धीरे, तिल-तिल। यों तो पिछले दो-तीन सालों से ही ठहराव का यह एहसास बराबर ही होता रहा है, पर इधर एक साल से तो यह एहसास तीखा होते-होते जैसे असह्य-सा हो गया था।

सामने खड़ी लंबी छुट्टियाँ और गरमी के बेहद लंबे अलस और उदास दिन ! कॉलेज क्या बंद हो जाएँगे जैसे समय गुज़ारने का एक अच्छा-ख़ासा बहाना ख़त्म हो जाएगा। वरना उसके नितांत घटनाहीन जीवन में मात्र कॉलेज जाना भी एक घटना की ही अहमियत रखता है। कॉलेज, और कॉलेज के साथ जुड़ी अनेक समस्याओं की आड़ में वह कम से कम किसी में व्यस्त रहने का संतोष तो पा लेती है। वरना उसकी अपनी ज़िंदगी में कुछ भी तो ऐसा नहीं है, जो क्षण-भर को भी उत्तेजना पैदा कर सके। बंटी यदि सिर के बल खड़ा हो गया, तो उसी को लेकर वह उत्तेजित-सा महसूस करती रहती है। यदि उसने ठीक से खाना नहीं खाया या कि वह किसी बात पर ज़िद करके रो दिया या कि उसने कोई ऐसी बात पूछ ली, जो इस उम्र के बच्चे को नहीं पूछनी चाहिए तो वह उत्तेजित होने की स्थिति तक परेशान हो जाया करती है। हालाँकि भीतर ही भीतर वह भी कहीं जानती है कि इनमें से कोई भी बात उसे सही अर्थों में उत्तेजित करके नहीं थकाती, वरन् सही अर्थों में उत्तेजित होने के प्रयत्न में ही वह थक जाती है। केवल थक ही नहीं जाती, एक प्रकार से टूट जाती है।

पर कल वकील चाचा ने उसके सामने जो प्रस्ताव रखा और आज जिसके लिए वे फिर आनेवाले हैं, उसने उसे भीतर से जैसे पूरी तरह झकझोर दिया।

हालाँकि वह समझ नहीं पा रही है कि आख़िर कल की बात में ऐसा नया क्या था, जिसे लेकर वह इतनी परेशान या विचलित हो रही है। एक बहुत-बहुत पुरानी, समाप्तप्राय-सी कहानी की पुनरावृत्ति ही तो है ! फिर ? फिर भी कुछ है कि सारी बात को वह बहुत सहज ढंग से नहीं ले पा रही है। लग रहा है जैसे उसे पूरी तरह मथ दिया गया है।

वकील चाचा जब भी आते हैं, एक बार वह पूरी तरह मथ जाती है। बाहर से तो तब भी कुछ घटित नहीं होता, एक पत्ता तक नहीं हिलता, पर मन के भीतर ही भीतर उसे जाने कितने आँधी-तूफ़ानों को झेलना पड़ता है। उसने झेले हैं।

अजय के किसी के साथ संबंध बढ़ने की सूचना और फिर उसके साथ सैटल हो जाने की सूचना ने उसे कितना तिलमिला दिया था। अकेले रहने के बावजूद तब एक बार फिर नए सिरे से अकेलेपन का भाव जागा था, बहुत तीखा और कटु होकर। अपमान की भावना ने उस दंश को बहुत ज़्यादा बढ़ा दिया था।

और कोई एक साल से ऊपर हुआ, चाचा ने ही आकर कहा था, "क्या बताएँ, कुछ समझ में नहीं आता। बंटी को लेकर उसके मन में एक कचोट है और यही कचोट कभी-कभी..." तो वह ऊपर से नीचे तक क्रूर संतोष से भर गई थी। न चाहते हुए भी आशा की एक हलकी-सी किरण मन में कौंधी थी। कौन जाने बंटी ही...

चाचा ने बंटी के लिए खिलौने दिए तो जाने क्यों लगा था कि ये मात्र बंटी के लिए ही नहीं हैं। बंटी को माध्यम बनाकर उस तक भी कुछ भेजा गया है। उसके बाद अजय स्वयं आया था। हमेशा की तरह अलग ही ठहरा, अलग ही रहा और केवल बंटी को बुलवाया। उससे तो मुलाक़ात तक नहीं की, फिर भी शकुन को लगता रहा था कि न मिलकर भी अजय जैसे कहीं फिर से उससे जुड़ गया है। उस दिन अजय के पास से लौटने पर वह बड़ी देर तक बंटी को दुलारती-पुचकारती रही थी, मानो बंटी वहाँ से अकेला नहीं लौटा हो, अपने साथ अजय को भी ले आया हो।

पर धीरे-धीरे वह कचोट भी शायद समाप्त हो गई, कम से कम यह तो स्पष्ट हो गया कि उसे लेकर कुछ भी आशा करना एकदम व्यर्थ है। और उसके बाद से बराबर यह लगता रहा है कि अब सबकुछ समाप्त हो गया है, अंतिम और निर्णयात्मक रूप से। और तब से समय उसके लिए जम गया था, शिला की तरह।

चाचा ने कल बात शुरू करने से पहले कहा था, "अब तो कोई उम्मीद नहीं है।" तो उसे यही लगा था कि उम्मीद तो उसे न अब है, न पहले कभी थी। फिर किस बात की उम्मीद ? फिर से साथ रहने की कोई चाहना उसके मन में नहीं थी। उसने कई बार अपने और अजय के संबंधों के रेशे-रेशे उधेड़े हैं—सारी

स्थिति में बहुत लिप्त होकर भी और सारी स्थिति से बहुत तटस्थ होकर भी, पर निष्कर्ष हमेशा एक ही निकला है कि दोनों ने एक-दूसरे को कभी प्यार किया ही नहीं।

शुरू के दिनों में ही एक ग़लत निर्णय ले डालने का एहसास दोनों के मन में बहुत साफ़ होकर उभर आया था, जिस पर हर दिन और हर घटना ने केवल सान ही चढ़ाई थी। समझौते का प्रयत्न भी दोनों में एक अंडरस्टैंडिंग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता था, वरन् एक-दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बना लेने की आकांक्षा से। तर्कों और बहसों में दिन बीतते थे और ठंडी लाशों की तरह लेटे-लेटे दूसरे को दुखी, बेचैन और छटपटाते हुए देखने की आकांक्षा में रातें। भीतर ही भीतर चलनेवाली एक अजीब ही लड़ाई थी वह भी, जिसमें दम साधकर दोनों ने हर दिन प्रतीक्षा की थी कि कब सामनेवाले की साँस उखड़ जाती है और वह घुटने टेक देता है, जिससे कि फिर वह बड़ी उदारता और क्षमाशीलता के साथ उसके सारे गुनाह माफ करके उसे स्वीकार कर ले, उसके संपूर्ण व्यक्तित्व को निरे एक शून्य में बदलकर। और इस स्थिति को लाने के लिए सभी तरह के दाँव-पेंच खेले गए थे—कभी कोमलता के, कभी कठोरता के। कभी सबकुछ लुटा देनेवाली उदारता के, तो कभी सबकुछ समेट लेनेवाली कृपणता के। प्रेम के नाटक भी हुए थे और तन-मन को डुबो देनेवाले विभोर क्षणों के अभिनय भी। पता नहीं, उन क्षणों में कभी भावुकता, आवेश या उत्तेजना रही भी हो, पर शायद उन दोनों के ही शंकालु मनों ने कभी उन्हें उस रूप में ग्रहण ही नहीं किया। दोनों ही एक-दूसरे की हर बात, हर व्यवहार और हर अदा को एक नया दाँव समझने को मजबूर थे और इस मजबूरी ने दोनों के बीच की दूरी को इतना बढ़ाया, इतना बढ़ाया कि फिर बंटी भी उस खाई को पाटने के लिए सेतु नहीं बन सका, नहीं बना।

साथ रहने की यंत्रणा भी बड़ी विकट थी और अलगाव का त्रास भी। अलग रहकर भी वह ठंडा युद्ध कुछ समय तक जारी ही नहीं रहा, बल्कि अनजाने ही अपनी जीत की संभावनाओं को एक नया संबल मिल गया था कि अलग रहकर ही शायद सही तरीके से महसूस होगा कि सामनेवाले को खोकर क्या कुछ अमूल्य खो दिया है। और वकील चाचा की हर ख़बर, हर बात इन संभावनाओं को बनाती-बिगाड़ती रही थी।

सामनेवाले को पराजित करने के लिए जैसा सायास और सन्नद्ध जीवन उसे जीना पड़ा उसने उसे खुद ही पराजित कर दिया। सामनेवाला व्यक्ति तो पता नहीं कब परिदृश्य से हट भी गया और वह आज तक उसी मुद्रा में, उसी स्थिति में खड़ी है—साँस रोके, दम साधे, घुटी-घुटी और कृत्रिम!

सात वर्षों में विभागाध्यक्ष से प्रिंसिपल हो जाने के पीछे भी कहीं अपने को

बढ़ाने से ज़्यादा अजय को गिराने की आकांक्षा ही थी। वह स्वयं कभी अपना लक्ष्य रही ही नहीं। एक अदृश्य अनजान-सी चुनौती थी, जिसे उसने हर समय अपने सामने हवा में लटकता हुआ महसूस किया था और जैसे उसका मुकाबला करते-करते, उससे जूझते-जूझते ही वह आगे बढ़ती चली गई थी।

पर इतने पर भी जब सामनेवाला नहीं टूटा तो उसकी सारी प्रगति उसके अपने लिए ही जैसे निरर्थक हो उठी थी।

कल पहली बार मन में आया कि यदि वह अपनी दृष्टि अजय की जगह अपने ही ऊपर रखती तो शायद इतनी मानसिक यातना तो नहीं भोगती। तब उसका हर बढ़ता हुआ क़दम, उसकी हर उपलब्धि उसे कुछ पाने का एहसास तो कराती। पर अब नहीं, अब और नहीं।

बीच में मेज़ पर दस्तख़त किए हुए काग़ज़ एक गिलास के नीचे दबे हुए फड़फड़ा रहे हैं। मेज़ के इस ओर शकुन बैठी है और दूसरी ओर वकील चाचा।

कितने दिनों के बाद उसने अजय के हस्ताक्षर देखे थे और देखकर एक अजीब-सी अनुभूति हुई थी, पर चाहकर भी वह उसे नाम नहीं दे पाई।

एक अध्याय था, जिसे समाप्त होना था और वह हो गया। दस वर्ष का यह विवाहित जीवन—एक अँधेरी सुरंग में चलते चले जाने की अनुभूति से भिन्न न था। आज जैसे एकाएक वह उसके अंतिम छोर पर आ गई है। पर आ पहुँचने का संतोष भी तो नहीं है, ढकेल दिए जाने की विवश कचोट-भर है। पर कैसा है यह छोर ? न प्रकाश, न वह खुलापन, न मुक्ति का एहसास। लगता है जैसे इस सुरंग ने उसे एक दूसरी सुरंग के मुहाने पर छोड़ दिया है—फिर एक और यात्रा—वैसा ही अंधकार, वैसा ही अकेलापन।

उसके अपने ही मन में जाने कितने-कितने प्रश्न तैर रहे हैं। क्या ख़ुद उसे अजय का संबंध भारी नहीं पड़ने लगा था ? क्या वह ख़ुद भी उससे मुक्त होना नहीं चाहती थी ? तो फिर ? कैसा है यह दंश ? क्या वह आज तक अजय से कुछ अपेक्षा रखती आई है ?

नहीं, अजय से कुछ न पा सकने का दंश यह नहीं है, बल्कि दंश शायद इस बात का है कि किसी और ने अजय से वह सब कुछ क्यों पाया, जो उसका प्राप्य था। या कि इस बात का था कि वह सब कुछ तोड़-ताड़कर निकलती और अजय उसके लिए दुखी होता, छटपटाता। साथ नहीं रह सकते थे, इसलिए साथ नहीं रह रहे हैं, स्थिति तब भी वैसी ही रहती, पर फिर भी कितना कुछ बदल गया होता ! यदि अजय के साथ मीरा न होती बल्कि उसके अपने साथ कोई होता...सच पूछा जाए तो अजय के साथ न रह पाने का दंश नहीं है यह, वरन् अजय को हरा न

पाने की चुभन है यह, जो उसे उठते-बैठते सालती रहती है।

इन फरफराते पन्नों ने उसके और वकील चाचा के बीच अनजाने ही शायद बहुत बड़ी खाई खोद दी है, तभी तो चाचा अस्वाभाविक रूप से चुप हो आए हैं। वरना इतनी देर तक चुप रहना चाचा के लिए संभव नहीं।

दोनों के बीच जबरदस्ती घिर आए इस मौन ने सारी स्थिति को जैसे कहीं और अधिक जटिल बना दिया। शकुन ने काग़ज़ों को उठाया और तह करके चाचा की ओर बढ़ाते हुए बोली, "इन्हें रख लीजिए। आप इतने चुपचाप क्यों हो गए ?"

अपने स्वर की सहजता से वह स्वयं चौंकी। कहीं यह भाव भी जागा कि ऐसी स्थिति में भी बहुत सहज-स्वाभाविक बने रहने की क्षमता उसमें है ?

चाचा ने इतनी गहरी साँस ली मानो बहुत देर से वे साँस रोके हुए ही बैठे थे।

"आख़िर यह काम भी मेरे ही हाथों होना था। लोग जोड़ते हैं, मैं तोड़नेवाला बना। पता नहीं। तुम भी क्या सोच रही होगी।"

स्वर की व्यथा शकुन को ऊपर से नीचे तक सहला गई। कोई बहुत ही मीठी-सी बात कहकर चाचा को आश्वस्त करने का मन हुआ।

"आया तो था कि आज तुमसे बहुत बातें करूँगा, तुम्हें समझाऊँगा, पर क्या बताऊँ शकुन, कुछ कहते ही नहीं बन रहा है।" उनका स्वर एकदम भर्राया हुआ था।

सीधे-सच्चे मन से निकली हुई चाचा की इन बातों में उसे कहीं भी बनावटीपन या कृत्रिमता की बू नहीं आ रही।

"आप क्यों इतना गिल्टी फ़ील कर रहे हैं...? इसमें नया तो कुछ नहीं हुआ ? जो था उसे ही तो कानूनी रूप दिया जा रहा है।" और कहने के साथ ही उसे लगा, काश ! वह अपने मन को भी ऐसे ही समझा पाती।

दोनों के बीच फिर मौन घिर आया। वे दोनों और आस-पास का सारा माहौल कुछ अजीब तरह से स्तब्ध था। केवल पास में पलंग पर सोया बंटी रह-रहकर हाथ-पैर चलाता या करवट ले लेता।

और फिर एकाएक चाचा ने बात शुरू कर दी, बिना किसी भूमिका के। शायद शकुन की बात ने, उसके स्वर ने उन्हें आश्वस्त कर दिया था या कि उस संकोच को तोड़ दिया जिसके नीचे दबे-दबे वे कुछ बोल नहीं पा रहे थे।

"हो सकता है तुम्हें मेरी कल की बात का बुरा लगा हो। रात में भी मैं इसी बात पर सोचता रहा था। पर बंटी को तुम्हें हॉस्टल भेज ही देना चाहिए।"

चाचा फिर अपने फ़ॉर्म में आ गए थे, पर शकुन का मन सशंकित हो आया। शकुन जानती है कि हॉस्टल का आग्रह चाचा के अपने मन की उपज नहीं, वे

उसे कलकत्ते से ढोकर लाए हैं। यह एक आदेश है जो सुझाव के खोल में लपेटकर उसके पास भेजा गया है और इसीलिए वह बहुत कटु हो आई।

"सात साल से मैं अकेली ही तो बंटी को पाल रही हूँ। उसका हित-अहित मैं दूसरों से ज़्यादा जानती हूँ।"

"तुम मुझे दूसरों में गिनने लगी हो ? कब से ? यह सही है कि मैं अजय का मित्र हूँ, कलकत्ते रहता हूँ, पर तुम्हारे लिए भी मेरे मन में कम स्नेह नहीं। पक्षपात की शिकायत भी करना चाहोगी तो एक बात तक तुम्हें ढूँढ़े नहीं मिलेगी।"

शकुन एक क्षण को भीतर ही भीतर कहीं लज्जित हो आई।

"नहीं, मेरा यह मतलब नहीं, आप ग़लत समझ गए। मैं तो..."

"ख़ैर छोड़ो !" शकुन को अब सुनना है, बोलने वे नहीं देंगे।

"तुम यह मत सोचो कि केवल अजय ही ऐसा चाहता है, मुझे ख़ुद ऐसा लगता है कि बंटी को तुम्हें एकदम हॉस्टल भेज देना चाहिए। इट इज़ ए मस्ट !"

शकुन चुप।

"तुम भी जानती हो, मैं बहुत साफ़ और दो टूक बात कहनेवाला आदमी हूँ। ज़रा सोचो, स्कूल के अलावा बंटी सारे दिन तुम्हारे साथ रहता है या तुम्हारी उस फूफी के साथ। तुम्हारे यहाँ अधिकतर महिलाएँ ही आती होंगी। यानी इसकी क्या कंपनी है ? बहुत हुआ पड़ोस के एक-दो बच्चों के साथ खेल लिया। पर एक आठ-नौ साल के ग्रोइंग बच्चे के लिए यह तो कोई बात नहीं हुई न। ही शुड ग्रो लाइक ए बॉय, लाइक ए मैन।"

शकुन चुपचाप चाचा का मुँह ताकती रही और जानने की कोशिश करती रही कि इसमें से कितनी बातें चाचा की अपनी हैं और कितनी को वे केवल उस तक पहुँचा रहे हैं।

पर एकाएक अजय बंटी को हॉस्टल भेजने को इतने उत्सुक क्यों हो गए ? उसे सारी बात में एक अजीब-सी गंध आने लगी। पहले अजय ने अपने को काटा, अब क्या बंटी को भी शकुन से काटना चाहते हैं। जाने कैसी कड़वाहट-सी उसके तन-बदन में घुलने लगी।

"बोलो, मैं ग़लत कह रहा हूँ ? कल मैं देख रहा था कि किस कदर वह अभी भी तुमसे चिपका-चिपका रहता है। यह सब बहुत नार्मल नहीं है। अपनी उम्र के बच्चों का साथ उसके लिए बहुत ज़रूरी है। और वह तो उसे इस घर में मिल नहीं सकता।"

थोड़ी देर पहले चाचा के चेहरे पर जो उदासी थी, गिल्ट का जो बोझ था, वह सब पता नहीं कब बह गया। पर शकुन के मन की टूटन...रोम-रोम को

सालता वह दंश तो अभी भी जैसे का तैसा बना हुआ है। ऊपर से वे सारी बातें ? वकील चाचा को क्या एक बार भी इस बात का ख़याल नहीं आ रहा कि कितना सह सकती है आख़िर शकुन ?

"अच्छा बताओ, बंटी जिस तरह पल रहा है तुम उससे संतुष्ट हो ?" और जैसे पहली बार उसका उत्तर सुनने के लिए वे चुप हुए।

"मैं जितना भी संभव हो सकता है, उसके लिए करती हूँ। कॉलेज के बाद का सारा समय एक तरह से उसी पर देती हूँ, और कर ही क्या सकती हूँ ?"

"ओफ्फोह ! बात तुम्हारे करने की तो नहीं है। इससे किसको इंकार है कि तुम बहुत करती हो, बल्कि जितना नहीं करना चाहिए उतना करती हो। पर उसे तुम हमउम्र बच्चों की कंपनी तो नहीं दे सकती हो न ?"

और उन्होंने नज़रें शकुन के चेहरे पर गड़ा दीं। एक बार शकुन का मन हुआ कि वह एक शब्द भी नहीं बोले, ढीठ बनकर सब सुनती चली जाए—देखें, कहाँ तक बोलते हैं ? क्यों सुने वह अब इन लोगों की बातें ? क्यों माने इन लोगों के सुझाव ? अपने और बंटी के बारे में वह पूरी तरह स्वतंत्र है, कुछ भी सोचने के लिए, कुछ भी करने के लिए।

"बोलो !"

"बंटी को हॉस्टल भेजने की बात तो आपने कह दी, पर कभी यह भी सोचा है कि उसे हॉस्टल भेजकर मैं कितनी अकेली हो जाऊँगी।" और उसका स्वर जैसे एकाएक ही बिखर गया। वह कहीं से भी अपनी दुर्बलता नहीं दिखाना चाहती थी, पर जाने कैसे गला भिंच-सा गया।

चाचा की नज़रों की चुभन और भी तीखी हो गई। शकुन को लगा जैसे बात कहने के पहले या तो वे अपनी बात का वज़न तौल रहे हैं या शकुन के सहने का सामर्थ्य। वह भीतर ही भीतर कहीं से बेचैन होने लगी। साथ ही मन में एक आक्रोश भी घुलने लगा। बंटी उसके अधिकार की सीमा है, जिसमें वह किसी को नहीं आने देगी। अपने चेहरे पर नज़रें टिकाए चाचा उसे बड़े घाघ लगे। एक क्षण को इच्छा हुई, ऊपर से ओढ़ी हुई इस सद्भावना के रेशे-रेशे बिखेर दे और वात्सल्य में छिपी उस मक्कारी को उघाड़कर रख दे। कौन-सा दाँव अब चलेंगे...वह अपने को पूरी तरह तैयार करने लगी।

"मुझे डर है शकुन, कहीं तुम अपना अकेलापन ख़त्म करने के चक्कर में बंटी का भविष्य ही न ख़त्म कर दो ! तुम्हारा यह अतिरिक्त स्नेह उसे बौना ही न छोड़ दे।"

शकुन ऊपर से नीचे तक तिलमिला गई। पर फिर भी उससे एक शब्द तक नहीं कहा गया।

चाचा धीरे-धीरे और सँभल-सँभलकर बोल रहे थे। शायद शकुन के चेहरे की प्रतिक्रिया भी उन्होंने समझ ली थी और स्थिति की नाज़ुकता भी।

"चीज़ों को सही तरीके से लेना सीखो, शकुन ! मैं जानता हूँ कि तुम्हें इस बात में तरह-तरह की गंध आ रही होगी। जिस स्थिति में तुम हो, उसमें यह बहुत स्वाभाविक भी है। जब आदमी एक जगह धोखा खाता है तो उसे लगता है, सब जगह धोखा ही धोखा है। पर ऐसा होता नहीं है।"

शकुन चुपचाप पैर के नाखून से धरती कुरेदती रही। उसे कुछ नहीं कहना, बस वह करेगी वही, जो उसे ठीक लगेगा।

"बात बंटी के हित की है और सच पूछो तो बंटी से भी ज़्यादा तुम्हारे हित की है। तुम मानोगी नहीं और कहना भी बड़ा अजीब लगता है, पर मेरे सामने इस समय तुम्हारी बात ही सबसे प्रमुख है।"

शकुन चौंकी। अब यह कोई नया दाँव है क्या ? अँधेरे में चाचा का चेहरा बहुत साफ़ नहीं दिखाई दे रहा, पर स्वर में कहीं भी किसी तरह के दाँव-पेंच की गंध नहीं थी। क्या भरोसा, वकील आदमी ठहरे !

"ज़रा आज से आठ-नौ साल बाद की बात सोचो जब बंटी की अपनी ज़िंदगी होगी, अपने स्वतंत्र संबंध होंगे, अपनी इच्छाएँ और अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ होंगी, तब तुम्हारा कितना अस्तित्व होगा उसकी ज़िंदगी में ?"

चाचा एक क्षण को रुके। मानो बात को धीरे-धीरे कहकर उसके एक-एक पहलू के महत्त्व को समझा देना चाहते हों।

"और इस स्थिति की दो ही परिणतियाँ हो सकती हैं...होंगी। या तो तुम उसके स्वतंत्र अस्तित्व को समाप्त करके उस पर हावी होने की कोशिश करोगी और या फिर अपने को बहुत ही उपेक्षित और अपमानित महसूस करोगी। उस समय तुम्हें यही लगेगा कि जिसके पीछे तुमने अपनी सारी ज़िंदगी बरबाद की, वह अब तुम्हें ही भूलकर अपनी ज़िंदगी जीने की बात सोच रहा है। उस समय तुम्हें बुरा लगेगा। आज अजय को लेकर तुम्हारे मन में जो कटुता है, हो सकता है कि वही फिर बंटी को लेकर हो...और आज से दस गुना ज़्यादा हो..."

शकुन को लगा जैसे कोई पूरे होश-हवास में उसे आरी से चीरे जा रहा है। एक बहुत ही कटु और वीभत्स सच्चाई है, जिसे उसके पूरे नंगेपन में चाचा उसके सामने रखना चाहते हैं। पर क्यों...क्या वह यह सब नहीं जानती ? या कि उसने इस सब पर नहीं सोचा है ? दिनों, हफ्तों, महीनों सोचा है। रात-रात-भर जागकर सोचा है, पर यह सोचना उसे कहीं उबारता नहीं, केवल डुबोता है, गहरे में, और गहरे में।

एक क्षण को कहीं बहुत गहरे में डूबी-डूबी-सी शकुन को चाचा की आवाज़

बड़ी अस्वाभाविक-सी लगी। वह एकटक चाचा के चेहरे को देखकर भी जैसे कुछ नहीं देख रही थी।

"जो होना था सो तो हो ही गया, और चलो अच्छा ही हुआ। सारी ज़िंदगी उस तनाव में काटने की अपेक्षा तो उससे मुक्त होना लाख गुना अच्छा था। यह क़ानूनी कार्यवाही हो जाएगी सो भी अच्छा ही रहेगा। यह संबंध ही ऐसा है कि लाख लड़ भिड़ लो, अलग रहने लगो, पर कहीं न कहीं आशा का एक तंतु जुड़ा ही रह जाता है। वह आशा चाहे ज़िंदगी-भर पूरी न हो...होती भी नहीं है...फिर भी मन है कि इधर-उधर नहीं जाता, बस उसी में अटका रह जाता है।"

शकुन का मन हुआ कि साफ़ कह दे कि उसके मन में आशा का कोई भी तंतु-वंतु नहीं है, पर इतना बड़ा झूठ उससे नहीं बोला गया, सो भी वकील चाचा के सामने। उम्र और अनुभवों ने सान चढ़ाकर जिनकी नज़रों को बहुत पैना बना दिया है। "पर मैं चाहता हूँ कि अब तुम अपने बारे में सोचना शुरू करो, बिलकुल नए ढंग से, एकदम व्यावहारिक स्तर पर।"

शकुन की आँखों में एक बड़ा असहाय-सा भाव उतर आया। क्या रखा है सोचने के लिए अब उसके पास ?

"तुम सोच रही होगी कि पहले इन काग़ज़ों पर दस्तख़त करवाए, फिर बंटी को अलग करने की बात शुरू कर दी, कितना क्रुएल हूँ मैं, क्यों ? यही सोच रही थी न ?"

"नहीं तो...मैंने तो ऐसा कुछ नहीं सोचा।" झूठ बोलते समय उसका अपना स्वर शायद बहुत काँप-सा रहा था, कम से कम उसे ऐसा ही लगा।

"सोचा भी हो तो मैं बुरा नहीं मानूँगा। पर मैं तुम्हें तकलीफ़ देने के लिए बंटी को अलग नहीं करना चाहता, बिना बंटी को अलग किए भी तुम सोच सको तो अच्छा है। पर इतना ज़रूर कहूँगा कि तुम केवल बंटी की माँ ही नहीं हो, इसलिए केवल बंटी की माँ की तरह ही मत जियो, शकुन की तरह भी जियो।"

चाचा का अभिप्राय वह समझ भी रही थी और नहीं भी समझ रही थी।

"ठीक है, जो कुछ भी हुआ, वह बहुत सुखद नहीं है, पर वह अंतिम भी नहीं है। कम से कम तुम जैसी औरत के लिए वह अंतिम नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए।"

और एकाएक ही शकुन को वह रात याद आ गई, जब इसी तरह आमने-सामने बैठकर चाचा उसे समझा रहे थे—दो जने साथ रहते हैं तो एडजस्ट तो करना ही पड़ता है शकुन, अपने को कुछ तो मारना ही पड़ता है। और जब उनके सारे हथियार चुक गए थे तो बड़े हताश स्वर में बोले थे, "यदि ऐसा ही है तो फिर अच्छा है कि तुम लोग अलग हो जाओ। संबंध को निभाने की ख़ातिर अपने को

ख़त्म कर देने से अच्छा कि संबंध को ख़त्म कर दो।''

विवाह के बाद से ही उसके जीवन के हर महत्त्वपूर्ण मोड़ के साथ चाचा किसी न किसी रूप से जुड़े ही हुए हैं। अब फिर किस महत्त्वपूर्ण दिशा की ओर संकेत कर रहे हैं ये ?

''अगर अजय अपनी ज़िंदगी की नई शुरुआत कर सकता है तो तुम क्यों नहीं कर सकती ? क्यों अपने को इतना बाँध-बाँधकर रखती हो ? आख़िर प्रिंसिपल होने के नाते यहाँ के भद्र समाज में तुम्हारा उठना-बैठना होगा ही, इस दृष्टि से कभी...'' इस बार शकुन एकाएक जैसे चौंकी। क्या चाचा डॉक्टर जोशी की ओर संकेत कर रहे हैं ? पर नहीं, जिस बात को पूरी तरह उभरने के पहले ख़ुद उसने मन ही मन में दबा दिया, उसे चाचा जान ही कैसे सकते हैं ? फिर भी वह हलके से सावधान हो आई।

''तुममें क्या नहीं है ? बुद्धिमान हो, पढ़ी-लिखी हो, प्रिंसिपल हो, सारे शहर में तुम्हारा मान-सम्मान है।'' फिर एक क्षण को ठहरकर हलके से विनोद के साथ बोले, ''परिस्थितियों ने चाहे तुम्हें जितना तोड़ा हो, समय को तुमने अपने ऊपर हाथ नहीं रखने दिया। रियली यू सीम टू बी एज-प्रूफ।''

और इस वाक्य के साथ ही वातावरण जैसे हलका हो आया। सारी बात को और अधिक सहज बनाने के लिए उन्होंने फिर कहा, ''जो कुछ हो गया उसे भूल जाओ। बीती बातों को कातते रहना बूढ़ों का स्वभाव होता है। पर तुम तो...''

पास सोये बंटी ने करवट ली और एकदम पलंग की पाटी पर आ गया। शकुन झटके से उठी और उसे गिरने से बचाया।

''इतना लोटता है कि अगल-बगल में रुकावट न हो तो रात में पाँच-दस बार तो नीचे ही गिरे।'' फिर धीरे से बीच में करके उसे बड़े स्नेह से थपकने लगी।

चाचा ने मेज़ पर से टोपी उठाकर सिर पर रखी और उठने की मुद्रा में बोले, ''अरे, अब छोड़ो ये रुकावटें लगाना। गिरता है तो गिरने दो। कुछ नहीं होता इस तरह गिरने से। गिर-गिरकर ही बच्चे बड़े होते हैं, बनते हैं।'' और वे उठ खड़े हुए।

''इस सिलसिले में मुझे एक अमरीकन की बात याद आती है। वह कुछ महीनों यहाँ रहा था और देखने-सुनने के बाद बोला था कि हिंदुस्तानी लोग बच्चों से प्रेम नहीं करते, उन्हें बच्चों से मोह होता है, अंधा मोह। सच कहता हूँ तब मुझे बड़ा ताव आ गया था उस पर, पर बाद में सोचा, वह ठीक ही कहता था। एक आम हिंदुस्तानी बच्चे की सही ढंग से परवरिश करना जानता ही नहीं। प्यार और देखभाल के नाम पर माँ-बाप ही अपने को इतना थोपे रहते हैं बच्चे पर कि कभी वह पूरी तरह पनप ही नहीं पाता।''

और अपनी छड़ी उठाकर वे एकदम खड़े हो गए। उनसे दुगुनी उनकी छाया लॉन में लेट गई।

"यह क्या आप एकदम ही चल दिए ?"

"और नहीं तो क्या ? साढ़े दस तो बज गए। वैसे भी आज सवेरे का निकला हुआ हूँ।"

"कल तो चले जाएँगे न ?"

"बस, कल कूच !"

"अगला चक्कर कब लगेगा अब आपका ?" साथ-साथ चलते हुए ही शकुन ने पूछा।

"अपना आना अपने मुवक्किलों के हाथ है, जब भी किसी की तारीख़ पड़ जाए।"

आगे बढ़कर शकुन ने फाटक खोला। चाचा घूमकर खड़े हो गए। "देखो शकुन, मेरी बातों पर ज़रा गंभीरता से सोचना, जो कुछ मैंने कहा, वह महज तसल्ली देने के लिए नहीं, बल्कि आई मीन इट !" और उन्होंने बड़े स्नेह से शकुन का कंधा थपथपाया तो शकुन भीतर तक भीग आई। फिर एक क्षण रुककर बोले, "देखो, अब जब भी तारीख़ पड़ेगी अजय आ जाएगा, बस एक दस मिनट के लिए कोर्ट जाना होगा। इस किस्से को भी ख़त्म ही करो। अच्छा !"

और वे घूम पड़े। अँधेरे में तेज़-तेज़ कदमों से चलता हुआ उनका आकार छोटे-से-छोटा होता चला गया और फिर मोड़ पर जाकर अदृश्य हो गया। पर शकुन जहाँ की तहाँ खड़ी रही।

चाचा की उपस्थिति के, स्वर की आत्मीयता के और लाजवाब तर्कों के जादू ने उसके मन की सारी शंकाओं और संदेह को दूर कर दिया था। मंत्रविद्ध-सी उसने चाचा की एक-एक बात पर विश्वास कर लिया था और उसे चाचा की सारी बातों में अपना हित ही नज़र आया था, पर चाचा के अंतिम वाक्य ने जैसे एक झटके-से सारा जादू तोड़ दिया।

कुछ नहीं, वे केवल उससे हस्ताक्षर करवाने आए थे...कहीं वह अड़ ही जाती तो अजय के लिए एक संकट पैदा हो सकता था। 'मीरा इज़ एक्सपेक्टिंग' चाचा के शब्द उभरे। तो इसीलिए यह सारा जाल रचा गया था। यह बात तो अजय भी लिख सकता था, पर शायद इसीलिए चाचा को भेजा गया कि कोई रास्ता बाकी न रह जाए शकुन के बच निकलने के लिए। तारीख़ भी जल्दी ही डलवानी है, बच्चा होने से पहले सारा रास्ता साफ़ कर ही लेना है।

वह फिर छली गई, वह फिर बेवकूफ बनाई गई। उसका रोम-रोम जैसे

सुलगने लगा।

वे बंटी को हॉस्टल भेजना चाहते हैं, शायद उसे भी धीरे-धीरे कब्जे में कर लेना चाहते हैं। पर वह बंटी को कभी भी हॉस्टल नहीं भेजेगी। वह जानती है, अजय बंटी को बहुत प्यार करता है, पर अब से वह बंटी को मिलने भी नहीं देगी। बंटी से न मिल पाने की वजह से अजय को जो यातना होगी उसकी कल्पना मात्र से उसे एक क्रूर-सा संतोष मिलने लगा।

मरे-मरे हाथों से शकुन ने गेट बंद किया और किसी तरह अपने को घसीटती हुई पलंग तक लाई। बंटी सोया था, बेख़बर और निश्चिंत। ज़रूर किसी राजा-रानी और परियों के सपनों में खोया होगा। रोज़ कहानी सुनता है, पढ़ता है और फिर ऐसे ही सपने देखता है।

उसने झुककर उसे एक बार प्यार किया। उसके माथे पर बालों की जो लटें छितरा आई थीं, उन्हें समेटकर पीछे किया। लगा, बंटी का शरीर एकदम ठंडा हो आया है। बाहर ठंडक बहुत ज़्यादा बढ़ चुकी थी, अपने में ही डूबे-डूबे उसे पता ही नहीं लगा। उसने जल्दी में बंटी को गोद में उठाकर साड़ी का पल्ला उसके चारों ओर लपेट दिया और उसे भीतर ले आई।

बहुत ही धीरे-से सँभालकर उसने उसे पलंग पर सुला दिया...जैसे कुछ बहुत ही अमूल्य, बहुत ही क़ीमती हो।

और तब एक अजीब-सी भावना मन में आई—बंटी केवल उसका बेटा ही नहीं है, वह हथियार भी है, जिससे वह अजय को टारचर कर सकती है, करेगी।

और जब वह ख़ुद पलंग पर लेटी तो सबसे पहला चेहरा डॉक्टर जोशी का ही उभरा—वह चेहरा, जो एक समय बार-बार उभरने लगा था अपनी अनेक-अनेक मुद्राओं के साथ। पर जिसको उसने बरबस ही अपने से परे हटा दिया था। इधर चार-पाँच महीनों से कोई पता ही नहीं।

एक तो शहर का सबसे बड़ा डॉक्टर, फिर शकुन का निहायत ही सर्द और जड़ व्यवहार। आज अचानक फिर से सब कुछ याद हो आया। पिछली सर्दियों में बंटी बीमार हो गया था तो कितनी आत्मीयता और एहतियात से सँभाला था उसे। केवल बंटी को ही नहीं, बुखार के बढ़ते हर पाइंट के साथ हौसला खोती और घबराती शकुन को भी सँभाला था।

बीमारी के कारण ही दोनों का परिचय हुआ था। धीरे-धीरे कारण हट गया, बस परिणाम बाकी रह गया। वह पति से अलग होकर रहती है, यह शायद सारा शहर जानता है, इसलिए एक बार भी बंटी के पापा के बारे में नहीं पूछा था। हाँ, अपनी पत्नी की मृत्यु का समाचार ज़रूर दे दिया था और फिर बिना कुछ कहे

ही बहुत-कुछ कह दिया था।

शायद ऐसी बातें कभी शब्दों की मुहताज नहीं रहतीं।

जब-तब बंटी के समाचार जानने या कि 'ऐसे ही इधर से जा रहा था' का सहारा लेकर आते रहे थे। चाय-पानी होता था, बातचीत होती थी, पर शकुन उन सारे संकेतों के प्रति उसी उत्साह या ललक के साथ रिएक्ट नहीं कर पाती थी।

और फिर शकुन की उदासी के कारण ही सब कुछ समाप्त हो गया। शायद शुरू होने से पहले ही। किशोर उम्रवाली भावुकता तो थी नहीं कि आदमी खाना-सोना तक भूल जाए।

बड़े नामालूम-से ढंग से सब शुरू हुआ था और वैसे ही ख़त्म भी हो गया। बस एक हलका-सा अक्स उसके मन पर कहीं रह गया था, आज अनजाने ही वकील चाचा उस पर से समय की धूल पोंछ गए।

चेहरा उभरने के साथ ही पहली बात मन में आई—अजय के मुकाबले में जोशी कैसे हैं? और दूसरी बात आई—मीरा के मुकाबले में कैसे हैं ? मीरा को उसने नहीं देखा। बस सुना है उसके बारे में। अनेक काल्पनिक चेहरे भी उभरे हैं मन में। पहले वह उन काल्पनिक चेहरों की तुलना अपने से किया करती थी। वह तुलना बहुत स्वाभाविक भी थी। पर जोशी और मीरा के मुकाबले की क्या तुक भला ? फिर भी मन है कि बार-बार कुछ तौल-परख रहा है। उसे याद है, पहले भी जब-जब उसने जोशी के बारे में कुछ सोचा था, अनजाने और अनचाहे ही हमेशा अजय आकर उपस्थित हो गया था...केवल अजय ही नहीं, कहीं मीरा भी आकर उपस्थित हो जाती थी। उसे साफ़ लगता था कि जोशी या किसी का भी चुनाव उसे करना है तो जैसे अपने लिए नहीं करना है, अजय को दिखाने के लिए करना है...मीरा की तुलना में करना है। पर जब-जब यह भावना उठी उसने स्वयं अपने को बहुत धिक्कारा, अपनी भर्त्सना की। क्यों नहीं वह अपने लिए जीती है, अपने को लक्ष्य बनाकर जी पाती।

पर आज फिर अजय आकर खड़ा हो गया, अनदेखी मीरा आकर खड़ी हो गई। उसने अभी-अभी हस्ताक्षर करके दिए हैं, कम से कम अब तो वह इन सबसे मुक्त हो जाए। उसे मुक्त होना ही है, एक नई ज़िंदगी की शुरुआत करनी ही है।

पर फिर मन में कहीं तैर ही गया। अजय को उसे दिखा ही देना है कि वह अगर एक नई ज़िंदगी की शुरुआत कर सकता है तो वह भी कर सकती है। नहीं, उसे किसी को कुछ नहीं दिखाना है। जो कुछ भी करना है, अपने लिए करना है। और तब उसने बरबस ही सब चेहरों को परे धकेल दिया...

केवल जोशी का चेहरा बड़ी देर तक आँखों के सामने टँगा रहा।

# चार

आज पापा आनेवाले हैं।

दस बजे बंटी को सरकिट हाउस पहुँच जाने को लिखा है। ममी हैं कि पता नहीं कैसा मुँह लिए घूम रही हैं। न हँसती हैं, न बोलती हैं। बस गुमसुम। इस बार वकील चाचा के जाने के बाद से ही ममी ऐसी हो गई हैं। वकील चाचा भी एक ही हैं बस। ख़ुद तो बोल-बोलकर ढेर कर देंगे और ममी बेचारी की बोलती बंद कर जाएँगे। पता नहीं क्या हो गया है ममी को ? उसे देखना शुरू करेंगी तो देखती ही रहेंगी, ऐसे मानो उसके भीतर कुछ ढूँढ़ रही हों। रात को कहानी भी नहीं सुनातीं। ज़्यादा कहो तो कह देती हैं, 'सो जा, कल सुनाऊँगी।' वह तो सो ही जाता है, पर ममी को ऐसा करना चाहिए ?

उस दिन रात में पता नहीं कब बंटी की नींद खुल गई। देखा, दूर पेड़ के नीचे कोई खड़ा है। डर के मारे उससे तो चीख़ा तक नहीं गया था, बस साँस जैसे घुटकर रह गई थी। और वे ममी निकलीं। उसके बाद कितनी देर तक ममी उसे थपकती रहीं, दिलासा देती रहीं, पर भीतर दहशत जैसे जमकर बैठ गई थी। आधी रात को ऐसे कहीं घूमा जाता होगा ? चाचा जो कह गए थे गड़बड़ होने की बात। वह बिलकुल ठीक है। ज़रूर कुछ गड़बड़ हुआ है। ममी पहले तो ऐसी नहीं थीं। पर वह क्या करे ? ममी जब चुप-चुप हो जाती हैं तो उसका मन बिलकुल नहीं लगता।

परसों ही तो पापा की चिट्ठी आई थी। लिफ़ाफ़े पर ममी का नाम लिखा था। पिछली बार तो लिफ़ाफे पर भी उसका नाम था। अंदर भी दो काग़ज़ निकले, एक ममी ख़ुद पढ़ने लगीं, दूसरा उसे पकड़ा दिया। तो क्या ममी के पास भी पापा की चिट्ठी आई है ? ममी-पापा क्या दोस्ती करनेवाले हैं ? उसने अपनी चिट्ठी पढ़ ली और फिर ममी की ओर ध्यान से देखने लगा। ममी क्या ख़ुश नज़र आ रही हैं ? कहीं कुछ नहीं, बस वैसे ही चुप बैठी हैं, मानो पापा की कोई चिट्ठी ही नहीं आई हो। एक बार उसकी चिट्ठी पढ़ने तक के लिए नहीं माँगी। पिछली बार तो केवल उसी के पास चिट्ठी आई थी और उसे पढ़कर ही ममी कितनी

प्रसन्न हुई थीं। पापा के पास भेजने से पहले उसे अपनी बाँहों में भरकर इतना प्यार किया था, इतना प्यार किया था, मानो वह कहीं भागा जा रहा हो। और जब वह लौटकर आया था तो ममी उससे सवाल पर सवाल पूछे जा रही थीं... 'और क्या कहा और क्या कहा'... के मारे परेशान कर दिया था।

ममी से छिपकर उसने ममीवाला पत्र उठाकर देखा, घसीटी हुई अंग्रेज़ी की चार-छह लाइनें थीं, वह कुछ भी समझ नहीं सका। उसका पत्र हिंदी में था और बड़े-बड़े साफ़ अक्षरों में।

परसों रात को जब वह सोया तो बराबर उम्मीद कर रहा था कि ममी ज़रूर पहले की तरह प्यार करेंगी, कुछ कहेंगी। पर उन्होंने कुछ नहीं कहा, सिर्फ़ पूछा, 'तू जाएगा पापा के पास ?' यह भी कोई पूछने की बात थी भला ! पापा आ रहे हैं और वह जाएगा नहीं ? उसके बाद ममी बोली नहीं।

इस समय ममी उदास बिलकुल नहीं हैं। ममी की उदासी वह खूब पहचानता है। बिना आँसू के भी आँखें कैसी भीगी-भीगी हो जाती हैं।

अच्छा है, बैठी रहें ऐसी ही। वह तब पापा के पास जाकर खूब घूमेगा, चीज़ें ख़रीदेगा, हाँ, नहीं तो।

वह जल्दी-जल्दी तैयार हो रहा है और मन ही मन कहीं उन चीज़ों की लिस्ट तैर रही है जो उसे माँगनी है। कैरम-बोर्ड ज़रूर लेगा, एक व्यू मास्टर भी।

"दूध-दलिया खा लो।" फूफी अलग ही अपना मुँह फुलाए घूम रही है। पिछली बार भी पापा आए थे तो यह ऐसे ही भन्ना रही थी, जैसे इसकी भी पापा से लड़ाई हो।

"मैं नहीं खाता दूध-दलिया। बस रोज़ सड़ा-सा दूध-दलिया बनाकर रख देती है।"

"बंटी, क्या बात है ?" कैसी सख़्त आवाज़ में बोल रही हैं ममी। बंटी भीतर ही भीतर सहम गया। धीरे-से बोला, "हमें अच्छा नहीं लगता दूध-दलिया।"

"क्यों, दूध-दलिया तो तुझे खूब पसंद है। एक दिन भी न बने तो शोर मचा देता है। आज ही क्या बात हो गई ?"

"पसंद है तो रोज़-रोज़ वही खाओ, एक ही चीज़ बस। मैं नहीं खाता।"

"देख रही हूँ जैसे-जैसे तू बड़ा होता जा रहा है, वैसे ही वैसे ज़िद्दी और ढीठ होता जा रहा है। अच्छा है, भद्द उड़वा सबके बीच मेरी।"

कैसे बोल रही हैं ममी ! इसमें भद्द उड़वाने की क्या बात हो गई ! वह नहीं खाएगा दूध-दलिया, बिना नाश्ता किए ही चला जाएगा।

वह मेज़ से उठ गया तो ममी ने एक बार भी नहीं कहा कि कुछ और बना दो ! न कहें, उसका क्या जाता है ?

हीरालाल को कल ही कह दिया था कि ठीक नौ बजे आ जाना। साढ़े नौ बज रहे हैं, पर उसका पता नहीं। बंटी बेचैनी से इधर-उधर घूम रहा है। थोड़ी-थोड़ी देर में घड़ी देख लेता है। ममी किताब लेकर ऐसे बैठ गई हैं, जैसे समय का उन्हें कुछ होश ही नहीं हो। वह बताए कि साढ़े नौ बज गए। पर क्या फ़ायदा, कह देंगी अभी आता होगा।

वह सब समझता है। अब उतना बुद्धू नहीं है। ममी को शायद अच्छा नहीं लग रहा है कि बंटी पापा के पास जा रहा है। पर क्यों नहीं लग रहा है ? उसकी तो पापा से लड़ाई नहीं है। पर ऐसा होता है शायद !

एक बार क्लास में विभू से उसकी लड़ाई हो गई थी तो उसने अपने सब दोस्तों की विभू से कुट्टी नहीं करवा दी थी ? शायद ममी भी चाहती हैं कि वह भी पापा से कुट्टी कर ले। तो ममी उसे कहतीं। अच्छा मान लो ममी उससे कहतीं तो वह कुट्टी कर लेता ? और उसके मन में न जाने कितनी चीज़ें तैर गईं—कैरम-बोर्ड, व्यू-मास्टर...मैकेनो...ग्लोब...

तभी हीरालाल की छोटी लड़की आई, "बापू को ताप चढ़ा है, वे नहीं आ सकेंगे।"

"क्या हो गया ?" ममी की आवाज़ में ज़रा भी परेशानी नहीं है। हाँ, उनका क्या बिगड़ता है। वे तो चाहती ही हैं कि मैं नहीं जाऊँ। मैं ज़रूर जाऊँगा, चाहे कुछ भी हो जाए।

"भोत ज़ोर का ताप चढ़ा है, सीत देकर। वे तो गुदड़े ओढ़कर पड़े हैं, मुझे इत्तिला देने को भेजा है।" और वह चली गई।

"अब ?" बंटी रोने-रोने को हो आया।

ममी एक क्षण चुप रहीं। फिर फूफी को बुलाकर कहा तो फूफी अलग मि[illegible] दिखाने लगी, "बहूजी, मैं नहीं जाऊँगी वहाँ।"

"क्यों ? बस तुम ही मुझे छोड़कर आओगी।" बंटी फूफी का हाथ प[illegible] झूल आया, "जल्दी चलो, अभी चलो।"

"छोड़ आओ फूफी, वरना कौन ले जाएगा ?" कैसी ठंडी-ठंडी आ[illegible] बोल रही हैं। जैसे, कहना है, इसलिए कह रही हैं बस। ले जाए, न ले ज[illegible] फ़रक नहीं पड़ेगा।

फूफी एकदम बिफर पड़ी, "कोई नहीं है ले जानेवाला तो नहीं जाए[illegible] की ऐसी ही बेकली है तो ख़ुद आकर ले जाएँगे। इस घर में [illegible] धरम नहीं बिगड़ जाएगा। आप जो चाहे सज़ा दे लो बहू[illegible] मुझसे तो, आप जानो..."

हीरालाल को कल ही कह दिया था कि ठीक नौ बजे आ जाना। साढ़े नौ बज रहे हैं, पर उसका पता नहीं। बंटी बेचैनी से इधर-उधर घूम रहा है। थोड़ी-थोड़ी देर में घड़ी देख लेता है। ममी किताब लेकर ऐसे बैठ गई हैं, जैसे समय का उन्हें कुछ होश ही नहीं हो। वह बताए कि साढ़े नौ बज गए। पर क्या फ़ायदा, कह देंगी अभी आता होगा।

वह सब समझता है। अब उतना बुद्धू नहीं है। ममी को शायद अच्छा नहीं लग रहा है कि बंटी पापा के पास जा रहा है। पर क्यों नहीं लग रहा है ? उसकी तो पापा से लड़ाई नहीं है। पर ऐसा होता है शायद !

एक बार क्लास में विभू से उसकी लड़ाई हो गई थी तो उसने अपने सब दोस्तों की विभू से कुट्टी नहीं करवा दी थी ? शायद ममी भी चाहती हैं कि वह भी पापा से कुट्टी कर ले। तो ममी उसे कहतीं। अच्छा मान लो ममी उससे कहतीं तो वह कुट्टी कर लेता ? और उसके मन में न जाने कितनी चीज़ें तैर गईं—कैरम-बोर्ड, व्यू-मास्टर...मैकेनो...ग्लोब...

तभी हीरालाल की छोटी लड़की आई, "बापू को ताप चढ़ा है, वे नहीं आ सकेंगे।"

"क्या हो गया ?" ममी की आवाज़ में ज़रा भी परेशानी नहीं है। हाँ, उनका क्या बिगड़ता है। वे तो चाहती ही हैं कि मैं नहीं जाऊँ। मैं ज़रूर जाऊँगा, चाहे कुछ भी हो जाए।

"भोत ज़ोर का ताप चढ़ा है, सीत देकर। वे तो गुदड़े ओढ़कर पड़े हैं, मुझे इत्तिला देने को भेजा है।" और वह चली गई।

"अब ?" बंटी रोने-रोने को हो आया।

ममी एक क्षण चुप रहीं। फिर फूफी को बुलाकर कहा तो फूफी अलग मिज़ाज दिखाने लगी, "बहूजी, मैं नहीं जाऊँगी वहाँ।"

"क्यों ? बस तुम ही मुझे छोड़कर आओगी।" बंटी फूफी का हाथ पकड़कर झूल आया, "जल्दी चलो, अभी चलो।"

"छोड़ आओ फूफी, वरना कौन ले जाएगा ?" कैसी ठंडी-ठंडी आवाज़ में बोल रही हैं। जैसे, कहना है, इसलिए कह रही हैं बस। ले जाए, न ले जाए, कोई फ़रक नहीं पड़ेगा।

फूफी एकदम बिफर पड़ी, "कोई नहीं है ले जानेवाला तो नहीं जाएगा। मिलने की ऐसी ही बेकली है तो ख़ुद आकर ले जाएँगे। इस घर में आ जाने से तो कोई धरम नहीं बिगड़ जाएगा। आप जो चाहे सज़ा दे लो बहूजी, मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। मुझसे तो, आप जानो..."

और बड़बड़ाती हुई फूफी चली गई। ममी ने कुछ भी नहीं कहा। ममी का अपना काम होता तो कैसे बिगड़तीं। अब फूफी को कहो न कि बिगड़ती जा रही है, ढीठ होती जा रही है। बस डाँटने के लिए मैं ही हूँ। ठीक है कोई मत ले जाओ मुझे। और बंटी एकदम वहीं पसरकर रोने लगा।

"रो क्यों रहा है ? यह भी कोई रोने की बात है भला ? ठहर जा, कॉलेज के माली को बुलवाती हूँ।"

ममी माली को समझा रही हैं, "देखो, कह देना कि आठ बजे तुम लेने आओगे इसलिए जहाँ कहीं भी हों, आठ बजे तक सरकिट हाउस पहुँच जाएँ। तू भी कह देना रे। आठ से देर नहीं करें, समझे !" कैसी सख़्त-सख़्त आवाज़ में बोल रही हैं, एकदम प्रिंसिपल की तरह।

रास्ते में भी बंटी सोचता गया कि बहुत सारी बातें हैं जो वह पापा से पूछेगा। ममी से पूछी नहीं जातीं। कभी शुरू भी करता है तो या तो ममी उदास हो जाती हैं या सख़्त। उदास ममी बंटी को दुखी करती हैं और सख़्त ममी उसे डराती हैं। और इधर तो ममी को पता नहीं क्या कुछ होता जा रहा है। पास लेटी ममी भी उसे बहुत दूर लगती हैं। उसके और ममी के बीच में ज़रूर कोई रहता है। शायद वकील चाचा की कही हुई कोई बात, शायद कोई गड़बड़ी। उसे कोई कुछ नहीं बताता, वह अपने-आप समझे भी क्या ? ममी की बात तो पापा से भी नहीं पूछी जा सकती है।

पर एक बात वह ज़रूर पूछेगा कि क्या तलाकवाली कुट्टी में कभी अब्बा नहीं हो सकती ? अगर पापा भी साथ रहने लगें तो कितना मज़ा आए ! पर ऐसी बात पूछने पर पापा ने डाँट दिया तो ?

पापा बाहर ही मिल गए। बंटी देखते ही दौड़ गया और पापा ने उठाकर छाती से लगा लिया, "बंटी बेऽटा !" और दोनों गालों पर ढेर सारे किस्सू दे दिए।

"इतनी देर क्यों कर दी, हम तो कब से राह देख रहे हैं तुम्हारी।"

"हीरालाल बीमार पड़ गया, कोई लानेवाला ही नहीं था।"

माली ने आठ बजेवाली बात कही तो पापा बड़ी लापरवाही से बोले, "हाँ-हाँ, ठीक है, आ जाना आठ बजे !" और बंटी को लेकर भीतर आ गए।

कुछ किताबें, एक मैकेनो और टाफ़ी का एक डिब्बा बंटी के सामने फैले पड़े हैं।

"पसंद हैं सब ?"

"मुझे कैरम-बोर्ड और व्यू-मास्टर चाहिए।" बड़े शरमाते हुए बंटी ने कहा।

"अरे, तो तुम हमको लिख भेजते। तुम तो हमें कभी चिट्ठी ही नहीं लिखते।

अच्छा कोई बात नहीं, अगली बार दिलवाएँगे।"

बंटी का मन हुआ कि यहीं से दिलवाने को कह दें। पर कहा नहीं गया। ममी होतीं तो ज़िद करके ले लेता।

"तुम तो इस बार बहुत बड़े हो गए।" पापा उसे एकटक देख रहे हैं। वह झेंप गया। पापा हैं कि एक के बाद एक प्रश्न पूछे जा रहे हैं।

"पढ़ाई कैसी चल रही है ? अच्छे नंबर लाते हो न ?"

"कल हमारे यहाँ इन्स्पेक्शन था। मैंने खूब अच्छे जवाब दिए तो इन्स्पेक्टर साहब ने मुझे शाबाशी दी और सर ने भी।"

"शाबाश ! लो हमने भी शाबाशी दे दी !" और पापा ने उसकी पीठ थपथपा दी।

"और खेल कौन-कौन से खेलते हो ?"

"ताश, लूडो, कैरम..."

"क्या कहा, ताश लूडो, कैरम—धत्तेरे की ! यह भी कोई खेल हुए, लड़कियों के। क्रिकेट खेलो, हॉकी खेलो, कबड्डी खेलो, लड़कोंवाले खेल खेलो। घर से बाहर निकलकर भागने-दौड़नेवाले...

"अच्छा, पेड़ पर चढ़ सकते हो ?"

"नहीं, ममी डाँटती हैं, कहती हैं, गिर जाएगा !"

"तैरना सीखा ? तैरने की कोई जगह है ?"

"पता नहीं।"

"साइकिल चलाना आता है छोटी, दो पहिएवाली ?"

"ममी कहती हैं, जब दस साल का हो जाऊँगा तब दिलवाएँगी।"

"दोस्त कितने हैं ?"

"टीटू !"

"कौन है टीटू ?"

"घर के पास रहता है। हमारे स्कूल में पढ़ता है, पर मुझसे एक क्लास आगे है। और कुन्नी है।"

"कुन्नी कौन ?"

"शर्मा साहब की लड़की है, मेरी दोस्त। उनका घर भी उधर ही है। हमारे घर के पीछे चलिए, फिर इधर को मुड़िए, फिर थोड़ा-सा चलिए, बस उनका घर आ जाता है।"

इतनी अच्छी तरह समझाया फिर भी पापा हँस रहे हैं।

"और कौन दोस्त है ?"

"कोई नहीं।"

"बस, कुल दो दोस्त !"

"नहीं, स्कूल में तो बहुत सारे हैं। पर उनके घर तो दूर-दूर हैं।"

"तुम्हारा मन कैसे लगता है सारे दिन ? बच्चों को तो खूब दोस्तों के साथ रहना चाहिए, खूब खेलना चाहिए।"

"लग जाता है। ममी खूब कहानियाँ सुनाती हैं, खूब ! ताश भी खेलती हैं। फिर मैं किताबें पढ़ता हूँ। ड्राइंग बनाता हूँ। खूब सारी पेंटिंग बना रखी हैं मैंने। अच्छी-अच्छी तो ममी ने कमरे में लगा दीं।"

"अच्छा, इस बार हमारे लिए भी एक बनाना। हम भी अपने कमरे में लगाएँगे।"

तो एक क्षण को बंटी पापा का चेहरा देखता रहा। कह दे कि पापा हमारे साथ क्यों नहीं रहते ? इस घर में तो मेरी पेंटिंग लगी ही हुई हैं। पापा इसी घर को अपना घर क्यों नहीं बना लेते ? अलग घर में क्यों रहते हैं ? इस घर में मेरा बगीचा भी तो है—खूब सुंदर-सा।

"इस बार छुट्टियों में कलकत्ता चलोगे हमारे साथ ?"

बंटी ने बड़ी सशंकित-सी नज़र से पापा की ओर देखा। उसे साथ चलने को क्यों कह रहे हैं, पहले तो कभी नहीं कहा ?

"बहुत मज़ा आएगा, खूब घूमेंगे। बोलो ?"

"ममी चलेंगी तो चलूँगा।"

"छी-छी, इतने बड़े होकर भी ममी के बिना नहीं रह सकते। यह गंदी बात है बेटे ! अब तुम्हें ममी के बिना रहने की आदत डालनी चाहिए। तुम क्या लड़की हो जो ममी से चिपटे-चिपटे फिरते हो ?"

बंटी बहुत संकुचित हो आया। भीतर ही भीतर कहीं गुस्सा भी आने लगा। फूफी ऐसा कहती तो मज़ा चखा देता। पापा से क्या कहे ? पर पापा ऐसी बात कहते ही क्यों हैं ? ख़ुद तो ममी के साथ नहीं रहते, चाहते हैं वह भी नहीं रहे। बहुत चालाक हैं। एकाएक उसके मन में सामने बैठे पापा के लिए गुस्सा उफनने लगा। बहुत मन हुआ पूछे, आप ममी को भी साथ लेकर क्यों नहीं चलते ? उसने एक उड़ती-सी नज़र डाली। पता नहीं पापा उसकी बात से कहीं नाराज़ हो जाएँ तो ? वह पापा को जानता ही कितना है ? ममी की तो हर बात का उसे पता है, पर पापा...

"बोलो, इस बार छुट्टियों में तुम्हें वहाँ बुलवाने का इंतज़ाम करें ? छुट्टियाँ ख़त्म हो जाएँगी तो वापस भिजवा देंगे। नई-नई चीज़ें देखोगे—विक्टोरिया मेमोरियल, बोटेनिकल गार्डेंस, लेक्स, ज़ू...।"

और पापा एक-एक चीज़ के बारे में विस्तार से बताने लगे। बड़ा शहर, बड़े

शहर की बड़ी-बड़ी इमारतें, बड़ी-बड़ी बातें। और थोड़ी देर पहले समाया हुआ बंटी के मन का संकोच और भय इन बातों के बीच घुलने लगा। एक-एक जगह के कई-कई चित्र उसकी आँखों के सामने बनने-बिगड़ने लगे।

मन में एक साथ ही जाने कितना उत्साह और कौतूहल जाग उठा।

"वहाँ सब बँगला में बोलेंगे तो मैं क्या करूँगा ?"

"वहाँ सब मछली-भात खाते हैं ? तब तो सारे शहर में मछली की बदबू ही आती रहती होगी !"

"तेरह-चौदह तल्ले का मकान कितना ऊँचा होगा ?" और वह नज़र ऊँची करके अंदाज़ लगाने लगा।

"हुगली में जहाज भी तो चलते हैं ? हम देख सकते हैं भीतर तक जाकर ?"

"पी.सी. सरकार भी तो वहीं रहता है ? आपने जादू देखे हैं उनके ? कमाल ? सात बौनोंवाली कहानी के जादूगर जैसा है पी.सी. सरकार। अच्छा पापा, बंगाल की जादूगरनियाँ देखी हैं आपने, जो आदमी को भेड़ बनाकर रख लेती हैं ? जादू के ज़ोर से आदमी वेश बदल सकता है ?"

और हर उत्तर के साथ उसके सामने कौतूहल-भरी एक नई दुनिया खुलती जा रही है। वह मुग्ध-सा सुन रहा है और कल्पना की आँखों से बहुत कुछ देख भी रहा है।

पर 'बोलो आओगे छुट्टियों में ?' के साथ ही सारा जादू एक झटके के साथ टूट गया। नहीं बिना ममी के वह नहीं जाएगा, जा ही नहीं सकता।

खाना खाकर पापा ने कहा, "चलो, थोड़ी देर सो लेते हैं। शाम को फिर घूमने चलेंगे। दोपहर में तो सोते हो न ?"

उसने यों ही सिर हिला दिया। पापा ने उसे पलंग पर लिटा दिया और खुद नीचे लेट गए। ममी होतीं तो साथ ही सुला लेतीं। लेटते ही पापा को नींद आ गई। बंटी क्या करे, उसे नींद ही नहीं आती। यहाँ से तो निकलकर भी नहीं जा सकता। थोड़ी देर तो वह चुपचाप लेटा-लेटा कलकत्ता ही देखता रहा, फिर एकाएक उसे घर की याद आने लगी। ममी की याद आने लगी। वह शाम को आता तभी ठीक था।

लो, पापा की तो नाक भी बजने लगी—घुर्ऽऽऽ खूँ, घुर्ऽऽऽ खूँ।

बंटी को हँसी आने लगी। वह एकटक पापा के चेहरे की ओर देखने लगा। बिना चश्मे के कैसा लग रहा है पापा का चेहरा ? उसे ख़याल आया उसने इतने ग़ौर से तो पापा का चेहरा कभी देखा ही नहीं।

ममी के चेहरे की तो एक-एक लाइन उसकी जानी-पहचानी है। पापा के हाथों में बाल कितने बड़े-बड़े हैं। और तभी आँखों के सामने ममी की चूड़ीवाली कलाई

उभर आई। बंटी बहुत ऊबने लगा तो पापा की लाई हुई किताबों में से एक किताब शुरू कर दी।

शाम को ताँगे में बिठाकर पापा ने उसे घुमाया। आइसक्रीम खिलाई, चाट खिलाई। गन्ने का रस पिलाया। बंटी सोच रहा था कि पापा शायद कुछ चीज़ें और दिलवाएँगे। लेकिन उन्होंने कुछ नहीं दिलवाया तो बंटी को थोड़ी-सी निराशा हुई। पर फिर भी उससे माँगा नहीं गया। खा-पीकर, घूम-फिरकर शाम को वे लोग वापस आ गए। ताँगे से उतरकर बंटी भीतर जाने लगा कि एकदम पापा की चिल्लाहट सुनाई दी। मुड़कर देखा। पापा ताँगेवाले को डाँट रहे थे। पता नहीं ताँगेवाले ने क्या कहा कि पापा और ज़ोर से चिल्लाए, "झूठ बोलते हो ? घड़ी देखकर ताँगा किया था। मैं एक पैसा भी ज़्यादा नहीं दूँगा।"

बंटी सहमकर जहाँ का तहाँ खड़ा हो गया।

ताँगेवाले ने कुछ कहा और कूदकर ताँगे से नीचे उतर आया। पापा एकदम चीख पड़े, "यू शट अप ! ज़बान सँभालकर बात करो। जितना रहम खाओ उतना ही सिर पर चढ़े जा रहे हैं, जूते की नोक पर ही ठीक रहते हैं ये लोग..." पापा का चेहरा एकदम सुर्ख़ हो रहा था और आँखों से जैसे आग बरस रही थी। बंटी की साँस जहाँ की तहाँ रुक गई। चपरासी और दरबान ने बीच-बचाव करके ताँगे को रवाना किया।

पापा अभी भी जैसे हाँफ रहे थे और बंटी सहमा हुआ था। उसने पापा को कभी गुस्सा होते हुए तो देखा ही नहीं। एकाएक ख़याल आया, कभी इस तरह उस पर गुस्सा हों तो ? वह भीतर तक काँप गया। एकाएक उसे बड़ी ज़ोर से ममी की याद आने लगी। अब वह एकदम ममी के पास जाएगा। माली आया या नहीं ?

तभी चपरासी ने कहा, "बाबा को लेने के लिए आदमी आया था। आधा घंटे तक बैठा भी रहा, अभी-अभी गया है, बस आपके आने के पाँच मिनट पहले ही।"

बंटी की आँखों में आँसू आ गए। किसी तरह उन्हें आँखों में ही पीता हुआ वह बड़ी असहाय-सी नज़रों से पापा की ओर देखने लगा। मन में समाया हुआ एक अनजान डर जैसे फैलता ही जा रहा था।

पापा ने एक बार घड़ी की तरफ़ नज़र डाली, "चपरासी चला गया तो ? यह भी अच्छा तमाशा है, घड़ी देखकर घर में घुसो। जो समय उधर से दिया गया है उसी में घूमो-फिरो और लौट आओ। नॉनसेंस !"

एकाएक ही बंटी की छलछलाई आँखें बह गईं। पता नहीं माली के लौट जाने

की बात सुनकर या पापा का गुस्सा देखकर या कि इस भय से कि पापा कहीं रात में यहीं रहने को न कह दें। दो दिन से पापा को लेकर जो उत्साह मन में समाया हुआ था, वह एकदम बुझ गया और सामने खड़े पापा उसे निहायत अजनबी और अपरिचित-से लगने लगे।

"अरे तुम रो क्यों रहे हो ? रोने की बात क्या हो गई ?"

"माली चला गया, अब मैं घर कैसे जाऊँगा ?" सिसकते हुए बंटी ने कहा।

"पागल कहीं का ! यहाँ क्या जंगल में बैठा है ? मैं नहीं हूँ तेरे पास ?"

"ममी के पास जाऊँगा।" रोते-रोते ही बंटी ने कहा।

"हाँ-हाँ, तो मैंने कब कहा कि ममी के पास नहीं जाओगे।"

"पर माली तो चला गया ?"

"चला गया तो क्या ? मैं तुम्हें छोड़कर आऊँगा, बस।"

बंटी ने ऐसे देखा जैसे विश्वास नहीं कर रहा हो। कहीं उसे बहका तो नहीं रहे। अभी चुप करने के लिए कह दें और फिर कहने लगें कि सो जाओ।

पापा ने पास आकर उसका माथा सहलाया, गाल सहलाए तो टूटा विश्वास जैसे फिर जुड़ने लगा। पापा फिर अपने लगने लगे।

"पागल कहीं का ! इतना बड़ा होकर रोता है ममी के लिए।" तो अँसुवाई आँखों से ही बंटी हँस दिया। भीतर ही भीतर बड़ी शरम महसूस हुई अपने ऊपर। सचमुच उसे इतनी जल्दी रोना नहीं चाहिए। बच्चे रोया करते हैं बात-बात पर तो, वह तो अब बड़ा हो गया है। अब कभी नहीं रोएगा इस तरह।

बंटी पापा के साथ ताँगे में बैठा तो मन एकदम हलका होकर दूसरी ओर को दौड़ गया। पापा को देखकर ममी को कैसा लगेगा ? एकदम ख़ुश हो जाएँगी। वह खींचकर पापा को अंदर ले जाएगा और ममी का हाथ, पापा का हाथ मिला देगा—चलो कुट्टी ख़तम। फिर ममी और वह मिलकर पापा को जाने ही नहीं देंगे। सोते, घूमते-फिरते कितनी बार मन हुआ था कि ममी की बात करे। पापा से वह सब पूछे, जो ममी से नहीं पूछ पाता है। पर पापा का चेहरा देखता और बात भीतर ही घुमड़कर रह जाती। पर पापा को साथ लाकर और दोस्ती की बात सोच-सोचकर उसका मन थिरकने लगा।

जाने कैसे-कैसे चित्र आँखों के सामने उभरने लगे। पापा, ममी और वह घूमने जा रहे हैं। वह पापा के साथ मिलकर ममी को चिढ़ा रहा है या कभी ममी के साथ मिलकर पापा को।

अजीब-सा उत्साह है, जो मन में नहीं समा रहा है। कहानियों के न जाने कितने राजकुमार मन में तैर गए, जो अपनी-अपनी माँ के लिए समुद्र तैर गए थे या पहाड़ लाँघ गए थे। वह भी किसी से कम नहीं है। माँ के लिए पापा को ले

आया। अब दोस्ती भी करवा देगा। वरना कोई ला सकता था पापा को ? अब चिढ़ाए फूफी कि बंटी लड़की है। अब ममी कभी उदास नहीं होंगी। लेटे-लेटे छत या आसमान नहीं देखेंगी। टीटू की अम्मा यह नहीं पूछेंगी, "आते हैं तुम्हारे पापा यहाँ ?"

उसने बड़े थिरकते मन से पापा की ओर देखा। पापा एकदम चुप क्यों हैं ? अँधेरे में चेहरा ठीक से नहीं दिखाई दे रहा है। वह चाहता है, पापा कुछ बोलते चलें, कलकत्ता चलने की बात ही कहें या कि उसे लड़केवाले खेल खेलने की बात ही कहें, पर कुछ तो कहें। बोलते हुए पापा उसे अपने बहुत पास लगने लगते हैं। चुप हो जाते हैं तो लगता है जैसे पापा कहीं दूर चले गए। जैसे उसके और पापा के बीच में कोई और आ गया।

उसी निकटता को महसूस करने के लिए उसने अनायास ही पापा का हाथ पकड़ लिया।

पर पापा हैं कि बिलकुल चुप ! पापा की चुप्पी से बंटी के मन में अजीब तरह की बेचैनी घुलने लगी। कहीं दोस्ती की बात करते ही पापा चिल्लाने लगें आँखें लाल-लाल करके तो ? पापा का वही चेहरा उभर आया। ऐसे चिल्लाते होंगे तभी शायद ममी ने कुट्टी कर ली होगी। बंटी ने फिर एक बार पापा की ओर देखा। अँधेरे में पापा का चेहरा दिखाई नहीं दे रहा।

"बस, बस यहीं घर है, बाईं तरफ़वाला।" कॉलेज के पास आते ही ताँगा थम गया था। बंटी ने कहा तो ताँगेवाले ने बाईं तरफ़ को लगा दिया।

बंटी ने हाथ और कसकर पकड़ लिया। हाथ पकड़े-पकड़े ही वह ताँगे से नीचे उतरा और एक तरह से पापा को खींचता हुआ गेट की तरफ़ चला। उसे लग रहा था कि यदि उसकी पकड़ ज़रा भी ढीली हुई तो पापा छूटकर चल देंगे।

सड़क पर से वह चिल्लाया, "ममी, पापा आए हैं।"

लॉन में से एक छायाकृति तेज़-तेज़ क़दमों से फाटक की ओर आई। फाटक खुला और ममी सामने आ खड़ी हुईं। ममी को देखते ही बंटी का हौसला बढ़ गया। लगा, जैसे वह अपनी सुरक्षित सीमा में आ गया है। पापा के हाथ को पूरी तरह खींचता हुआ बोला, "भीतर चलिए न पापा ? मैं अपना बगीचा दिखाऊँगा। मोगरा खूब फूला है।"

पर ममी और पापा जहाँ के तहाँ खड़े हुए हैं, चुप और जड़ बने हुए।

"मैंने आदमी भेजा था। आपको शायद लौटने में देर हो गई। सो वह राह देखकर चला आया। आपको तकलीफ़ करनी पड़ी।"

"कोई बात नहीं।" बंटी ने चौंककर पापा की ओर देखा। यह पापा बोले थे ?

एकदम बदला हुआ स्वर। न प्यारवाला, न गुस्सेवाला। पता नहीं उस स्वर में ऐसा क्या था कि बंटी की पकड़ ढीली हो गई। फिर भी उसने कहा, "पापा, एक बार भीतर चलिए न ! ममी, तुम कहो न !" बंटी रुआँसा हो आया।

"कुछ देर बैठ लीजिए। बच्चे का मन रह जाएगा।" ममी कैसे बोल रही हैं ? किसी को ऐसे कहा जाता होगा ठहरने के लिए ?

"रात हो गई है, फिर लौटने में बहुत देर हो जाएगी।"

"इसी ताँगे को रोक लीजिए, अभी कहाँ देर हुई है, चलिए न !" हाथ पर झूलते हुए बंटी ने पापा को भीतर खींच ही लिया।

पापा भीतर आए। लॉन में ही ममी-पापा आमने-सामने कुर्सी पर बैठ गए। बंटी पुलकित। उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि क्या करे और कैसे करे।

"कल दस बजे ही पहुँच जाना। दूसरा ही नंबर है, पंद्रह-बीस मिनट में नंबर आ ही जाएगा। अपने-आप आ सकोगी न ?"

"हाँ, पहुँच जाऊँगी।"

अँधेरे में दोनों के चेहरे नहीं दिखाई दे रहे, पर आवाज़ें कैसी बदली हुई हैं। पापा ने कहाँ आने को कहा है ? मन हुआ पूछे, पर हिम्मत नहीं हुई। ममी-पापा की कोई बात है, उसे बीच में नहीं बोलना चाहिए।

तभी एकदम दौड़कर गया। रात में पौधे सोते हैं, उन्हें छूने से भी पाप लगता है और अगर फूल-पत्ता तोड़ो तब तो बहुत बड़ा, कालावाला पाप लगता है, यह बात अच्छी तरह जानते हुए भी बंटी अपने को रोक नहीं सका। चार-पाँच पत्तियों के बीच में तीन बड़े-बड़े मोगरे सवेरे ही खिले थे, उन्हें ही लंबी डंडी के साथ तोड़ लिया।

"कहाँ लगाऊँ, बुश्शर्ट में कहीं फूल लगेगा ?" उसकी समझ में नहीं आ रहा था, कैसे ख़ातिर करे वह पापा की !

"लाओ, हाथ में दे दो।" पापा उठ खड़े हुए।

"यह मेरा बोया हुआ मोगरा है, मैं ही इन्हें सींचता हूँ रोज़। दिन में आकर देखिए।"

बंटी ने फिर हाथ पकड़ लिया। वह जैसे पापा को जाने नहीं देना चाहता है।

ममी भी साथ-साथ चलीं। फाटक पर आकर पापा ने एक बार उसके गाल थपथपाए, पीठ पर हाथ फेरा और फिर धीरे-से हाथ छुड़ाकर ताँगे में जा बैठे। ताँगा चल दिया।

बंटी सन्न-सा रह गया। ममी का चेहरा नहीं दिख रहा, पर उसकी अपनी आँखों में आँसू आ गए और आँसुओं के साथ-साथ थोड़ी देर पहले ममी-पापा के साथ रहने के जो चित्र मन में बने थे, सब बह गए। वह और ममी—पहले की

तरह, बिलकुल अकेले-अकेले।

उसने बड़ी ही निरीह-बेबस नज़रों से ममी को देखा। ममी शायद उधर देख रही थीं, जिधर ताँगा गया था। फिर धीरे-से घूम गईं।

"चल, भीतर चलकर कपड़े बदल।" मरी-मरी-सी आवाज़ में ममी ने कहा और उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे सहारा देती-सी भीतर ले चलीं। ममी का हाथ उसकी पीठ पर रखा था, फिर भी किसी स्पर्श का एहसास उसे नहीं हो रहा था, कम से कम ममी के स्पर्श का नहीं।

तो क्या ममी उससे नाराज़ हैं ? सवेरे की अनमनी ममी उसकी आँखों के सामने एक बार फिर घूम गईं।

उसने कुर्सी पर रखे डिब्बे और किताबें उठाईं और ममी के साथ-साथ भीतर आया। कमरे में पहुँचकर जैसे ही बत्ती जलाई, बंटी ने देखा ममी की आँखें लाल हैं। तो ममी रोई हैं, शायद बहुत ज़्यादा रोई हैं। जाने क्यों उसका अपना मन रोने-रोने को हो आया। एक अजीब-सी अपराध भावना मन में घुलने लगी। जैसे वह कोई बहुत ही ग़लत काम करके आ रहा हो। वह ममी को छोड़कर क्यों गया ? सचमुच अब ममी की तरफ़ देखने की हिम्मत भी नहीं हो रही।

ममी कुछ बोल भी तो नहीं रहीं। बस, चुपचाप कपड़े निकालकर दे दिए और ऐसे ही बाहर देखने लगीं। शायद नहीं चाहतीं कि बंटी उनकी ओर देखे। एक बार उसका मैकेनो तो देखतीं। कित्ता बड़ा है !

"बदल लिए कपड़े ? बस्ता भी अभी से जमाकर रख ले, सवेरे फिर जल्दी नहीं उठा गया तो ?"

"कल छुट्टी नहीं है, इन्स्पेक्शन की !"

"ओह ! मैं भूल गई थी।"

ममी ने जल्दी से बत्ती बुझा दी और उसे लेकर बाहर आ गईं। बंटी और ममी के पलंग पास-पास बिछे हुए हैं। पर बंटी हमेशा पहले ममी के पलंग पर ही सोता है। ममी कहानी सुनाती हैं। फिर दोनों दुनिया-भर की बातें करते हैं, उसके बाद बंटी अपने पलंग पर जाता है। कभी-कभी तो वह कहानी सुनते-सुनते ममी के पलंग पर ही सो जाता है, ममी बाद में उसे उसके पलंग पर लिटा देती हैं।

पता नहीं क्यों उसे लग रहा है कि आज वह जैसे ही ममी के पलंग पर सोएगा ममी मना कर देंगी। कहेंगी, अपने ही पलंग पर सोओ, इतने बड़े हो गए, अभी तक ममी के साथ सोते हो, या ऐसे ही कुछ भी। एक क्षण वह दुविधा में खड़ा रहा, फिर धीरे से अपने ही पलंग पर लेट गया, इस आशा के साथ कि ममी उसे अपने पास बुलाएँगी। उससे कुछ तो बात करेंगी। आज सारे दिन उसने क्या-क्या

किया, कहाँ घूमा, क्या खाया !

पर ममी चुप !

ममी शायद मुझसे नाराज़ हैं तो डाँट क्यों नहीं लेतीं ? मैं क्या मना करता हूँ ? पर कुछ तो बोलें।

वह तो पापा और ममी की दोस्ती कराने की बात सोच रहा था, अब तो ममी ने भी उससे कुट्टी कर ली। उसकी आँखों में आँसू आ गए। पर ममी उससे नाराज़ क्यों हैं ? और उस 'क्यों' का बोझ लिए-लिए ही सारे दिन के थके-माँदे बंटी की आँखें झपकने लगीं—और वह सो गया। गाल पर बह आए आँसू भी धीरे-धीरे सूख गए।

## पाँच

सवेरे चिड़ियों की चहचहाहट से ही बंटी की नींद उचटी। आँखें बंद किए-किए ही उसने करवट बदली। बिस्तर के अनछुए हिस्से की नमी-भरी ठंडक, सारे शरीर में एक फरहरी-सी दौड़ाती हुई, उसे ऊपर से नीचे तक ताज़गी से भर गई। नींद की दुनिया से वह असली दुनिया में आया तो कल का सारा दिन एक क्षण को खुमारी-भरी आँखों के सामने कौंध गया—पापा के साथ बिताया हुआ दिन। और साथ ही ख़याल आया ममी का ! ममी की उदास, सूजी-सूजी-सी आँखें। बिना एक शब्द भी बोले उसे चुपचाप सुला देना। न एक बार भी अपने पलंग पर आने को कहा, न प्यार किया, न सारे दिन के बारे में कुछ पूछा, पर क्यों ?

और कल की बात के साथ ही कल का 'क्यों' भी उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसने करवट बदली। अधमुँदी आँखों से ही ममी के पलंग की ओर देखा। पलंग खाली था। तो ममी उठकर चली गईं। एक बोझ जैसे उस पर से उतर गया। वरना ममी के सामने वह कैसे आँखें खोलता ? कल वापस लौटने के बाद से बराबर ही लग रहा था, जैसे उससे कुछ गुनाह हो गया, कुछ ग़लत हो गया। नहीं भेजना था तो ममी मना कर देतीं। इतना नाराज़ होने और रोने की क्या ज़रूरत थी ?

अब वह भीतर जाएगा तो अभी भी ममी उससे नहीं बोलेंगी ? ममी नहीं बोलेंगी तो कैसे रहेगा ? अब इम्तिहान भी तो शुरू होनेवाले हैं, कौन पढ़ाएगा उसे ? एकाएक बंटी का मन रोने को हो आया। वह उठा। देखता हूँ, कैसे नहीं बोलेंगी। मैं क्या कर सकता था, पापा ने जो बुलाया था।

कमरे में घुसते ही नज़र पापा की दी हुई चीज़ों पर पड़ी। एक बार इच्छा हुई मैकेनो को खोलकर देखे। पर नहीं, अभी नहीं, वह दबे पैरों गया और सब चीज़ें उठाकर सोफ़े के पीछे रख दीं। ममी कॉलेज चली जाएँगी तब खोलेगा, उसकी तो आज छुट्टी है।

फिर दौड़कर वह पीछेवाले आँगन में आया, जैसे सीधा बाहर से ही आ रहा हो। ममी अख़बार पढ़ रही हैं। दरवाज़े की ओर पीठ है, इसलिए चेहरा नहीं दिखाई

दे रहा। अच्छा ही है। हमेशा की तरह बंटी गया और पीठ पर लदकर गले में झूल गया।

"उठ गए ?" ममी ने उसको अलग करते हुए पूछा।

पर बंटी पीठ पर लदा रहा। अपनी तरफ से वह पूरी तरह सुलह कर लेना चाहता है। अब ममी को एक मिनट के लिए भी नाराज़ नहीं रहने देगा, दुखी भी नहीं रहने देगा। ममी नहीं चाहेंगी तो वह कहीं नहीं जाएगा, कुछ भी नहीं करेगा।

"जा, ब्रश करके आ बेटा ! फूफी दूध गरम कर रही है।" लगा स्वर हमेशा की तरह मुलायम ही था। बंटी हलके से आश्वस्त हुआ और दौड़ता हुआ बाथरूम की ओर चला गया।

लौटा तो मेज़ पर ममी की चाय और उसका दूध रखा हुआ था। ममी अख़बार पढ़ने के साथ-साथ चाय पी रही थीं। वह आया तो उसका दूध उसके सामने रख दिया, उसके टोस्ट पर मक्खन लगा दिया।

"ममी !" जैसे भीतर से हिम्मत जुटाकर बंटी बोला।

"हूँ ?"...अख़बार पर नज़र गड़ाए-गड़ाए ही ममी ने पूछा। बंटी को लगा जैसे ममी उससे नज़र नहीं मिला रहीं। आँखें शायद अभी सूजी हुई हैं। ममी क्या बहुत तकलीफ़ में हैं ? बंटी भीतर ही भीतर ममी के दुख से कातर होने लगा।

"ममी, तुम मुझसे गुस्सा हो ?" उसकी आवाज़ रुआँसी-सी हो गई।

ममी ने अख़बार हटाकर भरपूर नज़रों से उसकी ओर देखा और देखती ही रहीं। बंटी को लगा—ममी की आँखें, ममी का चेहरा जैसे पिघलकर एकदम नरम-नरम हो गया।

"पागल कहीं का ! किसने कहा मैं तुझसे नाराज़ हूँ ?" और आँखों में वही प्यार उमड़ आया—माँ वाला प्यार।

बंटी का मन हुआ दूध-टोस्ट रखकर ममी के गले से लिपट जाए, पर वह हिला नहीं। बस, ममी की आँखों के उस लाड़ को रोम-रोम में महसूस करता बैठा रहा। लगा मन पर एक बहुत बड़ा बोझ था, वह उतर गया।

ममी फिर अख़बार पढ़ने लगीं। धीरे-धीरे उनके चेहरे पर फिर वही उदासी फैल गई।

ममी उदास होती हैं तो सारा घर कैसा उदास हो जाता है ? कमरे, कमरे की हर चीज़। हमेशा बकर-बकर करनेवाली फूफी भी जाने कैसे-कैसे हो जाती है।

बंटी बोले तो किससे बोले, करे तो क्या करे ? तभी आँखों के सामने मैकेनो का वह डिब्बा घूम गया। नहीं, अभी बिलकुल नहीं।

ममी ने हीरालाल को बुलाकर कहा, "हीरालाल, आज हम कॉलेज नहीं आ पाएँगे।

मिसेज़ कौशिक से कहना ज़रा देख लेंगी।''

''जी, बहुत अच्छा सरकार।'' हीरालाल ने सलाम ठोंका और चला गया।

ममी को तैयार होता देख बंटी ने पूछा, ''ममी, तुम कहाँ जा रही हो ?'' एक क्षण को बिंदी लगाता हुआ ममी का हाथ जहाँ का तहाँ रुक गया। माथे पर बल पड़े, चेहरे पर एक अजीब-सी उलझन आई। फिर धीरे-से बोलीं, ''ज़रा काम से बाहर जाना है।''

पापा ने दस बजे ममी को पहुँचने के लिए कहा था। पर कहाँ ? ममी पापा के पास जा रही हैं तो उसे क्यों नहीं ले जा रहीं ? पूछ ले।

''तुम पापा के पास जा रही हो, ममी ?''

ममी फिर एक क्षण को रुकीं। फिर थोड़ी सख़्त आवाज़ में कहा, ''कहा न, काम से जा रही हूँ।''

हूँऽऽ ! न ले जाना चाहती हैं तो न ले जाएँ, झूठ क्यों बोलती हैं ? कल उसके सामने ही तो पापा ने कहा था कि दस बजे पहुँच जाना। मत बताओ, मेरा क्या जाता है।

सवेरे मन में जो एक अपराध-बोध था, भय था, वह धीरे-धीरे गुस्से में बदलने लगा। अच्छा है, कोई कुछ मत बताओ। मेरा क्या जाता है। मैं भी अपनी कोई बात नहीं बताऊँगा। इम्तिहान होगा तो यह भी नहीं बताऊँगा कि कैसा करके आया हूँ। तब पता लगेगा।

फूफी से बात करके ममी चली गईं। बंटी ने मुड़कर देखा भी नहीं। ममी के पास भी नहीं गया। हालाँकि मन में बराबर उम्मीद थी कि जाते-जाते एक बार ममी ज़रूर बुलाएँगी...कुछ कहेंगी पर ममी चली गईं। दूर होती घोड़े के घुँघरुओं की आवाज़ से ही बंटी ने जाना कि ममी का ताँगा चला गया।

फनफनाता हुआ वह फूफी के पास गया, ''फूफी बताओ तो ममी कहाँ गई हैं ?''

''गई हैं भाड़ झोंकने !'' बंटी अवाक्-सा उसका मुँह देखता रह गया।

''क्या बक रही है ?''

''हम कहते हैं, तुम यहाँ से चले जाओ बंटी भय्या। हमारे तन-बदन में आग लगी हुई है इस बख़्त। बहू को ले जाकर थाना-कचहरी में खड़ा करेंगे। मर्दानगी दिखाएँगे। अरे हाथ पकड़कर निभाने की मर्दानगी जिनमें नहीं होती, वह ऐसे ही मर्दानगी दिखाते हैं। अनबन किसमें नहीं होती, तो क्या ब्याही औरत को यों छोड़ दिया जाता है ?''

''तब से तुम बकर-बकर किए जा रही हो। बताती क्यों नहीं कि ममी कहाँ गई हैं ?''

"हमें नहीं मालूम कहाँ गई हैं ? पूछ लिया होता न अभी ! तुम हमारे सामने से चले क्यों नहीं जाते हो ? नहीं, हम चार बात अभी तुम्हें भी सुना देंगे, समझे !"

"हैंऽ सुना देंगे ! बड़ी आई है सुनानेवाली ! कोई मत बताओ मुझे कि क्या बात है।" गुस्से से भन्नाता हुआ बंटी कमरे में आया।

ब्याही औरत छोड़ने की बात का अर्थ तो फिर भी उसकी समझ में आ गया था, पर थाना-कचहरी की क्या बात है ? एकाएक चाचा की कुछ बातें मन में उभरीं। यह सब चाचा का ही चलाया हुआ चक्कर है। वकील हैं तो यही सब करेंगे। थाना-कचहरी में ममी को पुलिस ने ही रख लिया तो ? एक अजीब-सी दहशत उसके मन में भरने लगी।

सब-कुछ जान लेने की आतुरता और कुछ भी न जान पा सकने की विवशता से बंटी को रोना आ गया।

मैं भी पापा के खिलौने से खेलूँगा, ज़रूर खेलूँगा। जिसको गुस्सा होना हो, होए गुस्सा। बंटी ने सोफ़े के पीछे से सब चीज़ें निकालीं और मैकेनो का डिब्बा खोलकर बैठ गया। अच्छा है ममी आकर देखें।

"चलकर नाश्ता कर लो।"

लो, अब ये फूफी भी रोकर आई है। अच्छा है, सब रोओ, खूब रोओ। पर उसे कुछ मत बताना। वह होता ही कौन है किसी का ?

मेज पर दूध-दलिया और एक सेब कटा हुआ रखा था। देखते ही बंटी फिर भभक उठा—"फिर वही दूध-दलिया। मैं नहीं खाता रोज़-रोज़ सड़ा दलिया।" और गुस्से में आकर बंटी ने दूध-दलिये की कटोरी उछाल दी। झन्नऽऽ की आवाज़ कमरे में गूँजती हुई सारे घर में फैल गई। अजीबोगरीब क़िस्म के नक्शे बनाता हुआ दलिया सारे कमरे में यहाँ से वहाँ तक बिखर गया।

पूरी तरह तैयार होने के बावजूद, एक क्षण को बंटी जैसे अपने किए पर सहम गया।

"फेंको, खूब फेंको, सारी चीज़ें उठाकर फेंक दो। आख़िर तुम किसी से कम हो ? यह तो एक बहूजी हैं जो तुम्हारे पीछे जान हलकान किए रहती हैं। नहीं तो..."

"चोऽप कर !" बंटी पूरी ताकत लगाकर चीखा।

"चुप करे वह जिसके जीभ नहीं है। आने दो ममी को, यों का यों पड़ा रहने दूँगी यह सारा दलिया। देखें तो तुम्हारे कारनामे। अभी से तुम्हारा यह हाल है तो बड़े होकर पता नहीं क्या सुख दोगे अपनी महतारी को !"

बंटी ने अपनी बंदूक उठाई और फूफी को यों ही बकता छोड़कर बगीचे में आकर दनादन दागने लगा...ठाँऽय, ठाँऽय...

पेड़ों पर बैठे कौवे और चिड़िया उड़ गए और चारों ओर कुछ भी समझ में न आनेवाली आवाज़ों का शोर फैल गया।

कमरे के एक कोने में ममी खड़ी हैं, दूसरी ओर फूफी और बंटी। बीच में दलिया फैला पड़ा है। एक ओर को कटोरी लुढ़की पड़ी है।

''बंटी !''

बंटी चुप। जमीन में आँखें गड़ाए, पत्थर की तरह खड़ा है।

''बंटी !'' आवाज़ में न सख़्ती है न नरमी। जैसे कोई बटन दबा दिया हो और आवाज़ निकल गई।

बंटी टस से मस नहीं हुआ। जहाँ का तहाँ पत्थर का बना खड़ा रहा। उसने एक बार आँख तक उठाकर नहीं देखा। ज़मीन पर नज़रें टिकाए-टिकाए ही उसने जान लिया कि ममी चलकर उसके पास आ रही हैं। क्षणांश को वह सकपका गया। कहीं आते ही एक चाँटा नहीं जड़ दें। ठीक है, खा लेगा वह चाँटा भी, मारें तो सही। अब यहाँ कुछ भी हो सकता है। हमेशा ममी के गुस्से से या डाँट से बचानेवाली फूफी अगर बकर-बकर करके शिकायत कर सकती है तो ममी भी मार सकती हैं।

''बंटी !''

बंटी फिर भी चुप।

''तू सुन नहीं रहा बेटा, मैं क्या कह रही हूँ ?'' और ममी का हाथ बंटी की पीठ सहलाने लगा। इस अप्रत्याशित स्नेह के लिए तो बंटी बिलकुल तैयार नहीं था। पर मिला तो जैसे वह एकाएक पिघल गया। इतनी देर का गुस्सा, खीझ, दुख और भी जाने क्या-क्या जमा हुआ था मन में, सब आँखों के रास्ते बह निकलने को अकुलाने लगा।

''रोज़-रोज़ दलिया बनाकर रख देती है, हमसे नहीं खाया जाता। सवेरे-से गंदी-गंदी बातें बक रही है। तुम इसे कुछ नहीं कहतीं। पूछो तो इससे क्या-क्या कह रही थी...'' और बंटी का गला भिंच गया।

ममी ने जैसे ही बड़े प्यार से उसे अपने से सटाया कि बंटी एकदम फूट पड़ा। बस फिर रोता ही रहा। रोते-रोते जैसे हिचकियाँ बँध गईं।

''जब कल इसने कह दिया था कि दलिया अब इसे अच्छा नहीं लगता तब तुमने आज फिर क्यों दलिया बनाया फूफी ? तुम इसका इतना भी ख़याल नहीं रख सकतीं ?''

''मत इतना सिर चढ़ाओ बहूजी, हम अभी से कहे देते हैं, नहीं फिर आप ही दुखी होंगी।''

"तुम गई हो तब से ऐसी ही गंदी-गंदी बातें कर रही है। और भी बहुत गंदी-गंदी बातें।"

ममी ने उसके आँसू पोंछे तो आने के बाद पहली बार उसने भरपूर नज़र से ममी को देखा। और उसकी रोई-रोई आँखें ममी के चेहरे पर जैसे चिपक गईं। तभी ख़याल आया ममी थाना-कचहरी से लौटी हैं। वहाँ ममी के साथ क्या हुआ ? और खराब काम करने पर भी प्यार करनेवाली ममी के लिए उसके अपने मन में ढेर सारा प्यार भर गया।

लगता है, ममी बहुत परेशान हैं, शायद दुखी भी।

ममी बाथरूम में गईं तो वह कमरे में आ गया। पलंग पर फैला हुआ मैकेनो उसने जल्दी से समेटा और सोफ़े के पीछे छिपा दिया। अब वह ममी को बिलकुल भी दुखी नहीं करेगा।

ममी शायद सिर में भी पानी डालकर आई हैं। उन्होंने जूड़ा खोला और गीले बालों की एक ढीली-सी चोटी बना ली। बंटी छिपी-छिपी नज़रों से देख रहा है, उनका चेहरा, उनके हाव-भाव, उनका हर काम, और अपने हिसाब से सब कुछ समझने की कोशिश कर रहा है।

"बाहर गरमी बहुत तेज़ थी, माथे में जैसे गरमी चढ़ गई।" ममी ने कहा और पलंग पर सीधे लेटकर बाँह आँखों पर रख ली। ममी का आधे से ज़्यादा चेहरा ढक गया।

ममी शायद नहीं चाहतीं कि बंटी उनका चेहरा देखे। कल से ही तो कितनी उदास हैं ममी ! और ममी की उदासी से बंटी ख़ुद भीतर ही भीतर कहीं बड़ा उदास और दुखी हो आया है। क्या करे ममी के लिए वह ? सारे घर में एक चक्कर लगा आया। पर कुछ भी तो समझ में नहीं आया। लौटकर फिर कमरे में आया। ममी वैसे ही लेटी हैं। दबे पाँव उसने सोफ़े के पीछे से पापा का दिया सामान निकाला और धीरे-से अलमारी खोलकर उसमें बंद कर दिया।

अब ?

एकाएक ख़याल आया ममी के लिए शिकंजी बनाकर ले आए। वह दौड़ा-दौड़ा गया। नहीं, फूफी से वह बिलकुल बात नहीं करेगा। उस पर सवेरे से भूत चढ़ा हुआ है। अपने हाथ से शिकंजी बना लेगा। जाने कैसी फुर्ती आ गई है उसके हाथों में। स्टूल पर चढ़कर चीनी उतारी, नीबू काटा, बरफ़ निकाली। फूफी कैसे देख रही है उसकी तरफ़ ! बोले तो सही अब कुछ।

"ममी !" सारी मिठास घोलकर उसने धीरे-से पुकारा।

ममी चुप। क्या सो गई ? नहीं शायद रो रही हैं। वह ग़ौर से देखने लगा कहीं से बदन थिरक रहा है। पर नहीं, ममी एकदम निस्पंद लेटी थीं।

"ममी, यह शिकंजी लो। मैं बनाकर लाया हूँ।" और उसने एक हाथ से खींचकर उनका हाथ हटा दिया।

बंद आँखें और ऐसा कातर चेहरा कि बंटी भीतर तक पिघल गया। क्या हो गया ममी को !

"ममी, शिकंजी पिओ न !" बड़े अनुरोध-भरे स्वर में उसने कहा, पर अंत तक आते-आते उसका अपना स्वर जैसे बिखर गया।

ममी उठीं। उसके हाथ से गिलास लेकर बोलीं, "तू बनाकर लाया है शिकंजी, ममी के लिए ? मेरा राजा बेटा !" और बंटी को इस तरह एकटक देखने लगीं कि उनकी आँखों में पानी छलछला आया।

उन्होंने एक घूँट में गिलास खाली करके नीचे सरका दिया और बंटी को अपने पास खींचकर दोनों गालों पर एक-एक किस्सू दिया। बंटी जैसे निहाल हो गया। मन हुआ वह भी ममी के गले में बाँहें डालकर खूब प्यार करे।

अब ममी ज़रूर उसे अपने पास लिटाएँगी और सारी बातें बताएँगी। जो बच्चा माथे में गरमी चढ़ जाने पर अपने हाथ से शिकंजी बनाकर ला सकता है वह ममी की और बात नहीं समझ सकता ?

पर ममी ने इतना ही कहा, "जो भी तुझे पसंद हो, फूफी से कहकर बनवा ले और खा ले बेटा, मैं थोड़ा सोऊँगी।"

ममी लेट गईं और बंटी वहीं खड़ा रह गया—अपमानित सा, उपेक्षित-सा। ममी उसे बताती क्यों नहीं कि क्या हुआ है ?

दोपहर में बारिश हुई थी और नहाया-धोया लॉन बड़ा ताज़ा-ताज़ा लग रहा था। आज क्यारियों को सींचने की ज़रूरत नहीं है। बंटी माली के साथ-साथ पौधों के पास उग आई घास को उखाड़-उखाड़कर फेंक रहा है। लॉन के एक सिरे पर बैठी ममी को रह-रहकर देख लेता है। जब से ममी जागी हैं, वह उन्हीं के इर्द-गिर्द घूम रहा है। इस उम्मीद में कि शायद ममी कभी उसे बुला ही लें। या कि शायद उन्हें कभी उसकी ज़रूरत ही पड़ जाए। वह आज टीटू के यहाँ भी नहीं गया, न टीटू को ही यहाँ बुलाया। होगा टीटू समझदार, पर क्या वह यह समझ सकता है कि आज का दिन हल्ला-गुल्ला करनेवाला नहीं है। यह तो केवल बंटी ही समझता है कि उसके घर में कुछ बड़ी बात है। ममी बहुत उदास हैं, इसलिए उसे भी उदास रहना चाहिए। आज क्या खेल-कूद हो सकता है यहाँ ?"

घास उखाड़ते-उखाड़ते वे दोनों ममी के पास आ पहुँचे। उसी कोने में बंटी ने कुछ दिनों पहले आम की गुठलियाँ बोई थीं, जो अब एक-दो बारिश के बाद छोटे से पौधे के रूप में फूट आई थीं। बंटी रोज़ उन्हें देखता और प्रसन्न होता।

आज उनमें और दो-चार नई पत्तियाँ फूटी हुई थीं। बंटी ने बड़े दुलार से तांबई रंग की उन कोंपलों को छुआ—नरम-नरम, मुलायम-मुलायम। फिर सारी पत्तियों को गिना।

"माली दादा, अच्छा बताओ तो कितने दिनों में वह पौधा बन जाएगा बड़ा पेड़ जिसमें आम लगने लगें ?"

माली ने अपना झुर्रियोंवाला चेहरा ऊपर को उठाया, फिर अपनी गिजगिजी-सी आँखों को मिचमिचाते हुए बोला, "हमारे बंटी भैया बच्चे तो उनका पौधा भी बच्चा। बंटी भैया जब जवान होंगे तो पौधा पेड़ हो जाएगा। फिर बंटी भैया का ब्याह होगा, बहुरिया आएगी, बाल-बच्चे होंगे तो पेड़ में भी बौर फूटेगा, कोयल कूकेगी, आम लटकेंगे। बंटी भैया के ब्याह में इसी आम की बंदनवार बाँधूँगा। समझे !" फिर ममी की ओर देखकर बोला, "सुन रही हैं बहूजी, बहुत बड़ी बख्शीश लूँगा बंटी भैया के ब्याह में। आशीर्वाद दीजिए कि आपका यह बूढ़ा माली ज़िंदा रह जाए तब तक।"

"धत्, बेकार की बातें करते हो।" बंटी झेंप गया, फिर उसने छिपी नज़रों से ममी की ओर देखा। एक बड़ी फीकी पर मोहक-सी मुसकान ममी के चेहरे पर लिपटी हुई थी। तो क्या माली की बात से ममी खुश हुईं ?

"बताओ न, कब होगा यह पेड़ ?"

"बताया तो, अब तुम नहीं मानते तो बहूजी से पूछ लो।"

आख़िर क्यारी साफ़ करके माली हाथ झाड़कर खड़ा हो गया, "आप ही बताओ बहूजी, आम का पौधा बंटी भैया के साथ ही जवान नहीं होगा ? मैं क्या झूठ कहता हूँ ?"

"तुम बताओ ममी !" और वह ममी की कुर्सी के हत्थे पर जा बैठा। यह बात ही शायद ममी और उसके बीच सेतु बन जाए। वह ममी से बोलना चाहता है, कुछ भी, किसी भी विषय पर, ममी जो भी कहें, वह सुनेगा, पर ममी कहें तो।

"आम के पेड़ को बहुत साल लगते हैं बेटे, शायद दस साल।"

"बाऽप रे, दस साल !" बहुत ही जल्दी दूसरी बात नहीं पूछेगा तो ममी चुप हो जाएँगी और उसे जैसे कोई बात ही समझ में नहीं आ रही है। बिना ज़रूरत के तो सैकड़ों बात दिमाग़ में आएँगी और इस समय...

"अच्छा ममी, कुछ-कुछ कहानियों में ऐसे पेड़ होते हैं न, जिनमें चाँदी की पत्तियाँ होती हैं, सोने के फल और फलों के अंदर मोतियों के दाने निकलते हैं। ऐसे पेड़ हम नहीं उगा सकते ?"

"नहीं रे, वे सब तो कहानियों की बातें होती हैं।"

"पर अगर ऐसा होता नहीं है तो कहानी में कैसे आ जाता है ? कहानी तो

आदमी ही बनाता है, जिस चीज़ को आदमी ने कभी देखा ही नहीं, वह बात उसके दिमाग़ में आती ही कैसे है फिर ? ज़रूर कभी ऐसा रहा होगा..."

पता नहीं बंटी ने ऐसा क्या कह दिया कि ममी एकटक उसका चेहरा देखने लगीं और छलछलाई आँखों ने उनके चेहरे की उदासी को और गहरा दिया।

"ऐसा नहीं होता, मैंने कुछ ग़लत कहा है ममी ?" बंटी ने इस तरह कहा जैसे कोई अपराध हो गया हो उससे।

"होता होगा, मुझे नहीं मालूम।" और बात का सूत्र फिर टूट गया। बात को जोड़ने के प्रयत्न में बंटी का अपना मन जैसे कहीं से बिखरता जा रहा है।

रात को हाथ-मुँह धोकर, नाइट-सूट पहनकर, बिना एक बार भी 'नहीं' किए दूध पीकर एकदम राजा बेटा बना हुआ वह ममी के पास आया। लेकिन ममी ने फिर भी उसे अपने पास सोने के लिए नहीं कहा। थोड़ी देर वह इस प्रतीक्षा में खड़ा रहा, फिर बिना कहे ही वह ममी के पलंग पर बगल में लेट गया। मन हुआ ममी के तिल पर धीरे-धीरे उँगली फेरे, उनके गले में बाँहें डाल दे, पर आज जैसे उससे कुछ भी करते नहीं बन रहा था। बस, सवेरे से वह टुकुर-टुकुर ममी को देखता रहा है और प्रतीक्षा करता रहा है कि अब कुछ हो, अब कुछ हो। होना क्या था, यह शायद उसे भी नहीं मालूम था। पर फिर भी जैसे 'कुछ होने' की उसने हर क्षण प्रतीक्षा ज़रूर की है।

"–बंटी !" एकाएक ममी ने उसकी ओर करवट करके बहुत धीमी आवाज़ में कहा और अनायास ही उनकी उँगलियाँ उसके बालों को सहलाने लगीं।

"हाँ, माँ !" बहुत लाड़ में आकर वह ममी को माँ ही कहता है, एक बार ममी ने कहा भी था, तेरा 'माँ' कहना मुझे बहुत प्यारा लगता है।

"कल पापा के साथ क्या-क्या किया बेटा ?"

एक क्षण को बंटी समझ नहीं पाया कि कल की बात में से कौन-सी बात बतानी चाहिए और कौन-सी नहीं।

"कुछ नहीं, पहले पापा बातें करते रहे, फिर घुमाने ले गए, खिलाया-पिलाया, चीज़ें दिलवाईं और बस।" बात से भी ज़्यादा स्वर और लहजे को सहज बनाकर बंटी ममी को यह विश्वास दिला देना चाहता है कि कल कुछ ऐसा नहीं हुआ जिससे ममी नाराज़ हों या दुखी।

"जब बाहर से लौटकर वापस आए और देखा कि चपरासी वापस चला गया है तो मैंने पापा से कह दिया कि मैं यहाँ बिलकुल नहीं रहूँगा, घर ही जाऊँगा, ममी के पास। रात में मैं ममी के बिना रह नहीं सकता।" और इतना कहकर बंटी ने बाँह ममी के गले में डाल दी।

"क्या-क्या बातें करते रहे तुमसे ?"

"बहुत सारी। पढ़ाई की, खेल-कूद की, दोस्तों की, कलकत्ता की।" फिर एकाएक जैसे कुछ याद आ गया हो, इस तरह बोला, "पता है ममी, पापा क्या कह रहे थे ?" और वह एकदम कोहनियों के बल उठ आया।

"क्या ?"

"कह रहे थे तुम इस बार छुट्टियों में कलकत्ता आना। खूब घुमाएँगे-फिराएँगे, छुट्टियाँ ख़त्म होने पर फिर वापस छोड़ जाएँगे।"

इस वाक्य से ही ममी की जड़ता एकाएक जैसे टूट गई। अपने चेहरे पर गड़ी हुई नज़रों के तीखेपन को बंटी ने भीतर तक महसूस किया। अब इस बात से वह सचमुच ममी को जीत लेगा, उनकी सारी नाराज़गी दूर कर देगा, ममी पहले ही पूछतीं तो वह सब बता देता। बिना कुछ जाने-पूछे बेकार ही सवेरे से नाराज़-नाराज़ घूम रही हैं। अब जानें सारी बात और देखें उसकी समझदारी।

"फिर तूने क्या कहा ?"

"मैं क्या कहता, मना कर दिया। कह दिया कि मैं तो ममी के बिना कहीं जाता ही नहीं।" बंटी एकाएक उत्साह में आ गया। अब तो ममी जान लें कि पापा के बुलाने से उनके पास हो आया तो क्या, वह बेटा तो ममी का ही है।

"अच्छा किया।" ममी का स्वर भीगा हुआ और आवाज़ रुँधी हुई-सी थी।

"मैं क्यों जाऊँगा, अकेला तो मैं कब्भी जा ही नहीं सकता।"

"बंटी बेटा, तू मेरे ही पास रहना।" और उसके बाल सहलाती हुई ममी फिर जैसे अपने में ही खो गईं।

तो ममी को यह डर है कि पापा उसे अपने साथ ले जाएँगे। इसीलिए शायद सवेरे से ही नाराज़ थीं। पर पापा उसे क्यों ले जाएँगे भला ? वह तो शुरू से ही ममी के पास रहा है। कैसी लड़ाई है यह, ममी-पापा की ?

तभी मन में एक बात टकराई। याद आया एक बार उसकी और टीटू की लड़ाई हो गई थी, धुआँधार, घूँसे, मुक्के, मार-पीट, सभी कुछ हुआ था। फूफी ने बीच-बचाव करके टीटू को उसके घर भेज दिया था। वह रोता हुआ चला गया था और थोड़ी देर बाद ही शन्नो आई थी—'बंटी, टीटू की सारी चीज़ें दे दो, वह अब तुमसे कभी नहीं बोलेगा। पक्की कुट्टी कर ली है उसने।' कर ली है तो कर ले। हमारी भी पक्की कुट्टी है। उसने कहा, पहले हमारी चीज़ें दे जाएगा, फिर अपनी ले जाएगा। हमें नहीं चाहिए, सड़ी-सड़ी चीज़ें। हुँऽ—घमंडी, कटखना कहीं का...

और फिर दोनों ने अपनी-अपनी चीज़ें वापस ले ली थीं और दूसरे की लौटा दी थीं। घंटे-भर के भीतर-भीतर सारे हिसाब-किताब साफ़ कर लिए थे। लड़ाई में शायद ऐसा ही होता है।

पर वह भी किसी की चीज़ है क्या ? है तो किसकी ? ममी की या पापा की ? नहीं, वह ममी का है, ममी के ही तो पास रहता है। पापा उसे प्यार करते हैं, वह भी पापा को प्यार करता है, पापा उसे अच्छे भी लगते हैं, पर पापा उसे लेना क्यों चाहते हैं ? लेकिन पापा लड़े तो नहीं, उसने मना किया कि मैं वहाँ नहीं रहूँगा, घर जाऊँगा तो चुपचाप यहाँ छोड़ गए। यहाँ तो दोनों बिलकुल नहीं लड़े।

ममी-पापा की लड़ाई शायद ऐसी ही होती होगी, चुपचापवाली। कहीं ऐसा तो नहीं है कि सवेरे पापा ने ममी को बुलाकर कुछ कहा हो, और इसीलिए ममी इतनी उदास हों। उसने एक बार ममी को देखा। फिर हिम्मत करके पूछा, "ममी, आज सवेरे तुम पापा के पास गई थीं। वहाँ क्या हुआ ?"

"अब होने को बाकी ही क्या रह गया था ? बस, अब से तू मेरा बेटा है, केवल मेरा। भूल जा कि तेरे पापा..." और ममी का स्वर भिंच गया। उनसे फिर कुछ भी बोला नहीं गया।

ममी के रुँधे हुए स्वर और अँसुवाई आँखों ने बंटी को भीतर तक दहला दिया। पर ममी के प्रति सारे लाड़-प्यार और उनके दुख में दुखी होने के बावजूद एक क्षण को मन में यह बात ज़रूर आई—पापा को वह कैसे भूलेगा ? पापा तो उसे बहुत अच्छे लगते हैं।

कि एकाएक ममी फूट-फूटकर रो पड़ीं। तकिए में मुँह गड़ा लिया। सवेरे से जिस आवेग को रोके बैठी थीं, अचानक ही वह जैसे सारे बाँध तोड़कर बह निकला। बंटी बुरी तरह सकपका गया। ममी को उसने रोते देखा है, पर उसके सामने कभी रोती नहीं, इस तरह तो कभी रोती ही नहीं।

बंटी को कुछ भी समझ में नहीं आया कि वह क्या करे, कैसे ममी को चुप कराए। और जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो ममी के गले से लिपटकर ख़ुद भी फफक-फफककर रो पड़ा। "मत रोओ ममी—रोओ मत—"

## छः

ममी का रोना बंटी को एकाएक बड़ा बना गया। बड़ा और समझदार। ममी की पापा से लड़ाई हो गई है, पक्कीवाली ! दोस्ती तो अब हो ही नहीं सकती। ममी ने ख़ुद उसे बताया। बिलकुल ऐसे, जैसे बड़ों को बताया जाता है। साथ ही यह भी कि अब ममी के लिए जो भी है, बंटी ही है।

और ममी के एकमात्र सहारे बंटी के ऊपर जैसे हज़ार-हज़ार ज़िम्मेदारियाँ आ गई हैं ममी को प्रसन्न रखने की। हर काम में ममी की मदद करने की। कोई भी ऐसा काम न करने की, जिससे ममी दुखी और परेशान हों। वह सब करेगा, करता भी है। पर बस, न चाहते हुए भी पापा की याद उसे आ जाती है। लेकिन नहीं, अब वह उनके दिए हुए खिलौनों से नहीं खेलता। कभी उनकी बात भी नहीं करता। ममी को शायद अच्छा न लगे। रैक पर रखी हुई पापा की एकमात्र तसवीर को भी उसने एक दिन चुपचाप उठाकर खिलौनों की अलमारी में बंद कर दिया—ममी से लड़ाई कर ली तो अब बैठो यहाँ, और क्या ? सारे दिन ममी को उदास रखनेवाले, रुलानेवाले पापा की यही सज़ा है, बस ! और उसे लगा जैसे ममी की ओर से उसने पापा के ख़िलाफ़ एक बहुत बड़ा क़दम उठाया है।

ममी ने खाली रैक देखा और बंटी को देखने लगीं। एकटक। वह नीचे नज़रें झुकाए खड़ा रहा। पता नहीं कहीं नाराज़ ही न हो जाएँ। पर ममी ने उसे पकड़कर अपने पास खींच लिया। फिर प्यार किया। बहुत हलके मुसकराईं भी, शायद उसकी समझदारी पर। पर न जाने क्यों उनकी आँखें नहीं मुसकरा पाईं, बल्कि उदास हो गईं। विना आँसू के भी जैसे रोई-रोई हो जाया करती हैं, वैसी ही। तब वह एक क्षण को समझ ही नहीं पाया कि उसने ठीक किया है या ग़लत। तसवीर हटने से ममी ख़ुश हैं या उदास। क्योंकि ममी के होंठ तो मुसकराए पर आँखें उदास हो गईं।

कोई बात नहीं, धीरे-धीरे वह इन बातों को भी समझ लेगा। जितनी समझ आ गई है, वही क्या कम है ?

बाहर निकलकर आम के पौधों को देखता—बस कुल दो नई पत्तियाँ, कुल

चार पत्तियाँ, और लगता, वह तो उसके मुकाबले में बहुत-बहुत बड़ा हो गया है।

माली दादा कहते थे तुम्हारे साथ-साथ बड़ा होगा। कैसे होगा मेरे साथ-साथ बड़ा ? कोई आसान है इतनी जल्दी-जल्दी बड़ा होना, कोई हो सकता है ?

पापा ने इस बार उसे चिट्ठी लिखने को कहा था। पर उसने नहीं लिखी। लिखना तो ख़ूब अच्छी तरह जानता है, लिख भी सकता है। पापा से कहा भी था कि अब वह ज़रूर बराबर चिट्ठियाँ लिखा करेगा। पर तब वह सारी बात समझता कहाँ था ? तब तो उसे यह भी नहीं मालूम था कि ममी-पापा की पक्कीवाली कुट्टी हो गई है। पर अब कैसे लिख सकता है भला ! वह पूरी तरह ममी की तरफ़ है और ममी से उनकी कुट्टी है तो फिर बंटी से भी है। ऐसा ही तो होता है।

फिर भी जब ममी इधर-उधर होती हैं तो वह चुपचाप अलमारी खोलकर उस किताब को निकालकर देखता है, जिसके पीछे के कवर पर पापा अपना पता लिख गए थे। अब तो उसे मुँहज़बानी याद भी हो गया है—8ए, एलगिन रोड। पता पढ़ने के साथ ही उसके मन में पापा के घर के नक़्शे उभरने लगते हैं, ख़ूब-ख़ूब ऊँचा मकान। एलगिन रोड के नक़्शे उभरते हैं, कलकत्ते के नक्शे उभरते हैं—हावड़ा ब्रिज, जू, लेक्स, बोटेनिकल गार्डेंस, बिना तने का खूब बड़ा-सा बड़ का पेड़। पी.सी. सरकार का जादू—और फिर इन सबको दबोचती हुई, कुचलती हुई समझदारी उभरती है कि नहीं, उसे इन सबके बारे में सोचना भी नहीं है। पर इन सबको कुचलने के साथ उसके भीतर जाने क्या कुछ कुचलता रहता है। तब वह अपने-आपसे प्रॉमिस करता कि कभी भी पापा की बात नहीं सोचेगा। मन ही मन किए हुए प्रॉमिस पर जब पूरी तरह भरोसा नहीं हो पाता तब ज़ोर-ज़ोर से बोलकर प्रॉमिस करता है। अपनी ही आवाज़ सुनकर उसके भीतर एक नया आत्मविश्वास जागता।

ममी आजकल पहले की तरह सारे दिन उदास नहीं रहतीं। वह बहुत अच्छा बन गया है शायद इसीलिए। वह बड़ा होकर और भी अच्छा बन जाएगा तो फिर बहुत ख़ुश रहने लगेंगी। आजकल शाम को कभी-कभी बाहर भी जाती हैं। वह कभी मना नहीं करता। पूरी तरह आश्वस्त कर देता है, "ममी जाओ, मैं पीछे पढूँगा। फूफी से खाना लेकर खा लूँगा। बिलकुल भी तंग नहीं करूँगा।" फिर ममी उससे पूछतीं, "अच्छा बता तो बंटी, कौन-सी साड़ी पहनूँ ?" तब बिलकुल बड़ों की तरह वह सलाह देता। बिना सोचे-समझे नहीं, सारी साड़ियाँ देखकर, ख़ूब सोच-समझकर।

और ममी जब वही साड़ी पहन लेतीं तो फिर अपनी ही नज़रों में वह बहुत महत्त्वपूर्ण हो उठता। मन में कहीं ममी की मदद करने का संतोष भर जाता।

फिर जब ममी उसकी ओर देखती हैं तो उनकी आँखों से कैसा प्यार झरता रहता है।

वह ममी को जाने के लिए कह तो देता है पर ममी जब चली जाती हैं तो घर जैसे और भी ज़्यादा खाली-खाली हो जाता है। सारे दिन बोर होते बंटी की बोरियत और ज़्यादा बढ़ जाती है। स्कूल खुला होता तो समझदार बनकर रहना कितना सरल हो जाता। आधा दिन स्कूल में कट जाता, आधा दिन समझदार होकर रह लिए। अब छुट्टियों में सारे दिन क्या करे वह ? आख़िर पढ़े भी कब तक ? कभी फूफी से बतियाता रहता, कभी टीटू के घर चला जाता। या फिर घर के लोहे के फाटक पर झूलता या खड़ा-खड़ा सड़क ही देखता रहता। पर सड़क भी तो ऐसी है कि बहुत कम लोग इधर आते-जाते हैं। शहर से कटी-छँटी, बिलकुल एक तरफ़ को है वह जगह। थोड़ी दूर और आगे तो बस्ती बिलकुल ही ख़त्म हो जाती है। बस, सड़क बनी हुई है और दोनों ओर के दूर-दूर तक फैले ऊबड़-खाबड़ मैदान। और फिर उन मैदानों की सरहदें बनाती हुई पहाड़ियाँ। खड़ा वह फाटक पर रहता है पर मन उसका दूर-दूर दौड़ता रहता है। इन पहाड़ियों के पार क्या होगा, फिर उसके आगे क्या होगा, फिर उसके भी आगे ? मन में तरह-तरह के चित्र उभरते हैं, डरावने भी और रंगीन भी। राक्षसों की डरावनी गुफाएँ, परियों के सोने-चाँदी के महल।

और फिर इन सबके बीच में से उभर आता है—कलकत्ता किस तरफ़ होगा, कितनी दूर होगा यहाँ से ?

तब खट से उँगलियों का क्रास बन जाता। प्रॉमिस टूटने का पाप न लगे !

ममी की बगल में लेटा बंटी आसमान देख रहा है। झिलमिल-झिलमिल करते तारे छिटके हैं आसमान में। सप्तऋषि मंडल है, वह आकाश-गंगा है, वह तेज़-तेज़ चमकनेवाला ध्रुवतारा है। इस तारे को दिखा-दिखाकर ही तो ममी ने उसे बालक ध्रुव की कहानी सुनाई थी।

पाँच साल के बच्चे ने तपस्या की थी। इतनी सारी तपस्या कि भगवान भी ख़ुश हो गए।

कैसे करते होंगे तपस्या ? उसने ममी के पास सरककर पूछा, "ममी, तपस्या कैसे करते हैं ?"

"तपस्या ? क्यों ?"

"बताओ न ममी, मैं जो पूछ रहा हूँ।"

"अपने मन को मार लो, बस यही सबसे बड़ी तपस्या है।" ममी ने जैसे

टालने के लिए कह दिया।

"बालक ध्रुव ने तो जंगल में जाकर तपस्या की थी, न ?"

"की होगी रे !" और ममी ने तकिए में इस तरह मुँह गड़ा लिया जैसे वे अब और बात नहीं करना चाहती हों।

मन को मारना भी तपस्या करना हो सकता है क्या ? मन तो आजकल वह भी कितना मारता है अपना, तो क्या वह भी तपस्या कर रहा है ? एक अजीब-सी पुलक उसके मन में जागी। एक अजीब-सा आत्मविश्वास। कौन ख़ुश होगा उसकी तपस्या से ? भगवान...पापा...

खट से उँगलियों का क्रास बन गया। पर नहीं, वह पापा को याद थोड़े ही कर रहा है। वह तो केवल सोच रहा है कि ख़ुश होकर पापा फिर से उनके साथ रहने लग जाएँ तो ? यह तो ममी की बात हुई, ममी की ख़ुशी की। इससे प्रॉमिस थोड़े ही टूटेगा। मन को तसल्ली हुई।

ममी से पूछे ? पर नहीं, ऐसी बात भी ममी से नहीं पूछनी चाहिए।

हूँऽ। न हों पापा ख़ुश। वह ममी को ही ख़ुश करेगा। ख़ुश नहीं, सुखी करेगा। उसके सिवाए ममी का है ही कौन ? उसने ममी की ओर देखा। ममी ने तकिए में मुँह गड़ा रखा है। सचमुच उसकी ममी दुखी हैं।

जब भी वह ममी को लेकर आगे की बात सोचता, उसे हमेशा लगता जैसे ममी पर दुख ही दुख टूटे पड़ रहे हैं और वह अपने नन्हे-नन्हे हाथों से उन्हें दूर किए जा रहा है। कैसे दुख हैं सो नहीं जानता। उन्हें कैसे दूर कर रहा है यह भी नहीं जानता। बस, ममी दुखी हैं वह ममी का अकेला बेटा उन्हें दूर कर रहा है।

कई बार मन होता ममी को यह बात बताए। पर कैसे ? अच्छा, क्या तपस्या से पक्की कुट्टी को ख़त्म नहीं किया जा सकता ?

"ममी ?" उसने धीरे से पूछा।

"हूँ।"

"ममी, तपस्या करके ममी-पापा की कुट्टी नहीं ख़त्म की जा सकती ?"

ममी ने सिर उठाया और एक क्षण उसका चेहरा देखती रहीं। फिर बाँह में भरकर उसे अपने में भींच लिया।

पापा की बात करके ग़लती तो नहीं कर दी उसने ?

"तू पापा के साथ रहना चाहता है ?"

"नहीं ममी, मैं पापा के साथ नहीं रहना चाहता। मैं तो.."

बंटी ने इस तरह कहा जैसे ममी कहीं उसे ग़लत न समझ लें।

"क्यों बेटा, तुझे पापा चाहिए ? मन करता है कि पापा हों।"

बंटी एक क्षण असमंजस में रहा। हाँ कहने से कहीं ममी नाराज़ न हो जाएँ।

पर झूठ बोलने से तपस्या जो बिगड़ जाएगी। उसने धीरे से 'हाँ' कह दिया।

मम्मी उसके बाल सहलाती रहीं। पता नहीं उसमें 'पापा मिल जाएँगे' का आश्वासन था या 'पापा तो नहीं मिल सकते' की मजबूरी।

आज मम्मी का कॉलेज खुल गया। मम्मी ख़ुश-ख़ुश कॉलेज चली गईं। उनकी तो बोरियत जैसे ख़त्म हुई। गरमी की छुट्टियों के ये लंबे-लंबे दिन दोनों ने एक-दूसरे को सहारा दे-देकर ही काटे हैं। सारे दिन मम्मी के साथ ही रहता था।

हाँ, कभी-कभी जब शाम को मम्मी बाहर जातीं तो वह ज़रूर थोड़ी देर अकेला हो जाया करता था। पर आज तो जैसे दिन भी उसे अकेले ही काटना है। उसका स्कूल खुलने में तो अभी चार दिन बाकी हैं।

चलने से पहले मम्मी ने फूफी को समझाया, "चार बजे के करीब सब लोग चाय पीने यहीं आएँगी। दही-पकौड़ी और आलू की टिकिया तुम घर में बना लेना। चिवड़ा और मिठाई मैं चपरासी के हाथ भिजवा दूँगी। मदद की ज़रूरत हो तो उसे रोक भी लेना। चार बजे तक सब कुछ तैयार रहे हाँऽ !"

"मैं सब देख लूँगा मम्मी, तुम जाओ। चपरासी क्या करेगा, मैं मदद करवा दूँगा फूफी की।"

"मेरा राजा बेटा !" मम्मी ने प्यार से ग़ाल थपथपाया और चली गईं।

"बताओ फूफी, क्या करना है ?"

"एल्ले, अभी से क्या करना है ? कुछ नहीं, जाओ खेलो ! घर तो साफ़ कर लूँ पहले।"

मम्मी की टीचर्स की पार्टी है। 'आज तो उसे बहुत काम करना है' के भाव से बंटी सफ़ाई में जुट गया। कपड़ा लेकर टेबुल-कुर्सी पोंछ डाली। अपनी बुद्धि के हिसाब से जितनी साज-सज्जा कर सकता था, वह भी कर दी।

"अरे, तुम इतने समझदार कइसे हो गए, बंटी भय्या ! आजकल न ज़िद करते, न झगड़ा करते, न रोते। कहाँ से आ गई इतनी अक्किल तुम में ?"

"आएगी क्यों नहीं ? अब क्या मैं बच्चा हूँ ?" अपनी समझदारी का ठप्पा पड़ते देख बंटी कहीं भीतर ही भीतर पुलकित हो आया। मन हुआ फूफी को तपस्यावाली बात भी बता दे। यों भी फूफी उसके अकेलेपन की साथी है। वह उससे लड़ता भी है, उसे तंग भी करता है, उस पर रौब भी जमाता है। ज़मीन में चॉक या कोयले से शतरंज बनाकर चंगा-अंटा-पौ भी खेलता है। तो कभी उसकी गोद में सिर रखकर कहानियाँ सुनता है। फिर एक कहानी के साथ हज़ार प्रश्न।

तब फूफी बिगड़ पड़ती, "तुम इतनी बहस काहे करते हो ? कहानी है सो

है। बिना बोले सुनोगे तो सुनाएँगे, हाँऽ ! खाली हुँकारा दो, बस !''

''अच्छा फूफी, बालक ध्रुव ने जो तपस्या की थी...''

''ल्लो, फिर तुम्हारा कहानी-किस्सा शुरू हुआ। हम एक बात भी नहीं करेंगे इस बख़त।''

फूफी चली गई। बुद्धू कहीं की। सोच रही है, मैं ध्रुव की कहानी सुनूँगा, जैसे मुझे आती ही नहीं है।

बंटी अपनी छोटी-छोटी हथेलियों में उबले हुए आलू की गोल-गोल टिकिया बनाता जा रहा है। जैसी फूफी ने बताई ठीक वैसी ही। और कहानी चल रही है। वही सोनल रानी वाली।

रानी हँसे तो फूल झरे और रोए तो मोती झरे। राजा रानी के पीछे प्राण दे। रानी अपने हाथ से सोने के बरक में लपेटकर राजा को छप्पन मसालोंवाला, सुगंध से भरपूर पान खिलाती और मंद-मंद मुसकाती। मुसकान ऐसी कि राजा पागल। राजा के बीस रानियाँ और थीं। बीस रानियों के सौ बच्चे। सोनल बच्चों के पीछे प्राण देती। बच्चे खाएँ तो रानी खाए। बच्चे सोएँ तो रानी सोए। बच्चों का सिर दुखे तो रानी पीर से छटपटाए। बच्चों के चोट लगे तो रानी के फूल जैसे शरीर से खून झरे। कोई नहीं पतियाये तो आकर देख ले। माएँ लोगों ने बहुत देखीं पर ऐसी माँ तो देखी न सुनी। अपने और सौतेले बच्चों में कोई भेद ही नहीं। देखते-सुनते भी कैसे ? कोई सचमुच की औरत तो थी नहीं। डायन थी, सारे जादू बस में कर रखे थे। जैसा चाहती वैसा स्वाँग धर लेती।

''और जब अमावस्या के दिन रात अँधेरी घुप्प हो जाती तो वह अपने असली रूप में आती। काली भूत। अँधेरे में ऐसी घुल-मिल जाती कि पता ही नहीं लगता। फिर सबको जादू के बस में किया और एक बच्चा हड़प।''

बंटी की साँस जहाँ की तहाँ रुक जाती।

सवेरे मरे बच्चे की हड्डियों से चिपट-चिपटकर ऐसा रोती, ऐसा रोती कि चेत ही नहीं रहता। नौकर-चाकर दौड़ पड़ते। कोई गुलाब-जल छिड़कता, कोई केवड़ा-जल। राजा ख़ुद फूलों के पंखे से हौले-हौले बयार करते, बेटे का ग़म भूल, रानी की चिंता में परेशान हो जाते। रानी होश में आती तो चीख़ती, 'मेरे बच्चे को लाओ...नहीं मैं प्राण दे दूँगी।' इतना बड़ा राज्य, इतना बड़ा राजा फिर भी कोई पता ही नहीं...

''वह अपने बच्चों को भी खा जाती थी फूफी ?'' उस डायन के आतंक से पूरी तरह आतंकित बंटी बड़ी-बड़ी आँखें करके पूछता।

''और क्या ! डायन बनने के बाद क्या उसे होश रहता कि किसका बच्चा है ? बस भूख लगी, खाओ !''

"भूख लगे तो बच्चे को ही खा जाओ !"...उस मरे बच्चे के प्रति मन कैसा भीग-भीग आता बंटी का।

"भूख में आदमी तक को होश नहीं रहता—बस खाने को चाहिए, जो भी हो, जैसे भी हो, फिर वह तो डायन थी ! अपनी भूख की चिंता करती या बच्चों की ?"

"तो वह और किसी को खा लेती, नौकर-चाकरों या जानवरों को खा लेती।"

"काहे खा लेती ? बच्चों के कोमल मांस जैसा और कहाँ मिलता !"

"तो कभी दूसरे बच्चों को क्यों नहीं खाती, केवल राजकुमारों को ही क्यों खाती ?"

"खाएगी क्यों नहीं ? छप्पन भोग खाए राजकुमारों की देही में जैसा मांस, वैसा और कहाँ मिलता !"

"तो धीरे-धीरे राजा के सब बच्चे खा गई ?"

"और क्या, खा गई। सुंदर कोमल बच्चे हड्डी की ठठरियाँ बन गए। बस उन ठठरियों को देख-देखकर रोने का नाटक करती रहती..."

घिन और डर के मिले-जुले भाव से बंटी की आँखों में आँसू आ जाते। फूफी ने देखा तो प्यार से झिड़कते हुए बोली, "ऐल्लो, तुम आँसू टपकाने लगे। अरे ये तो क़िस्सा-कहानी है। कहीं सच में ऐसा थोड़े ही होता है। सब झूठ, मनगढ़ंत ! इन बातों से कहीं रोया जाता है, सुनो और भूल जाओ। नहीं हम आगे से कभी नहीं सुनाएँगे। हाँ।"

और उसने झट दूसरी कहानी शुरू कर दी—चार मूर्खों की। तो थोड़ी देर में ही बंटी खिलखिलाने लगा।

दौड़-दौड़कर बंटी ने मेज़ लगा दी और खड़ा होकर ममी की राह देखने लगा। अपनी सारी टीचर्स को लिए ममी आ रही हैं, हँसती हुईं, बतियाती हुईं। दीपा आंटी तो सबके बीच जैसे छिप ही गईं।

"कहो बंटी, कैसे हो ?"

"हैलो बंटी, कैसे हो ?" कइयों ने एक साथ पूछा।

"पहले से लंबा हो गया।" तो बंटी ने जैसे मन ही मन उसे सुधारा, "लंबा नहीं, बड़ा हो गया हूँ।"

"थोड़े मोटे भी होओ, वरना सींकिया पहलवान लगोगे।"

"बंटी ने मौका ताका और दीपा आंटी की बाँह से झूल गया। ममी की सारी टीचर्स में एक यही तो पसंद है, बाकी तो सब बेकार।

आप छुट्टियों में एक बार भी घर क्यों नहीं आईं आंटी ?

"छुट्टियों में हम यहाँ थे ही नहीं, बताओ कैसे आते ? हर साल बंटी बाहर

जाता था, इस बार हम बाहर चले गए।"

घसीटता हुआ वह दीपा आंटी को लॉन की तरफ़ ले गया अपने पौधे दिखाने के लिए।

"कहाँ गई थीं आप ?"

"कलकत्ता।"

कलकत्ता ? बंटी जैसे एक क्षण को पुलक आया। एक उड़ती-सी नज़र ममी की ओर डाली। वे सबको लिए बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ रही थीं।

"आपने क्या-क्या देखा वहाँ ? कैसा है कलकत्ता, आंटी ?"

"बहुत बड़ा और बहुत गंदा।"

"एलगिन रोड देखी आपने ?"

"नहीं तो !"

"लीजिए, एलगिन रोड भी नहीं देखी ?"

"मैं क्या वहाँ सड़कें देखने गई थी ? क्या है एलगिन रोड में ?"

"कुछ नहीं, वैसे ही पूछ लिया था।" बंटी पापा की बात नहीं बताएगा। किसी को बताना भी नहीं चाहिए उसे। अब तो वह सब समझता है।

दीपा आंटी अंदर जाने लगीं तो उसने जल्दी-से मोगरे के दो-तीन फूल तोड़े और बोला, "नीचे झुकिए, मैं आपके जूड़े में लगाऊँगा।"

हँसती हुई दीपा आंटी झुक गईं, "लगाना आता भी है ?"

"और नहीं तो क्या, ममी के बालों में रोज़ मैं ही तो फूल लगाता हूँ। यह सब पौधे भी तो मैंने ही लगाए हैं।" अपने पौधों की बात करते समय बंटी के मन में उत्साह और गर्व जैसे छलका पड़ता है।

बंटी ला-लाकर सबको खिला रहा है। मना करने पर मनुहार भी करता है... "एक तो लीजिए...ज़रा-सी और...यह गरमवाली टिकिया..." सब लोग खाने और बतियाने में समान रूप से जुटी हुई हैं।

कितना बोलती हैं ये सब लोग ? जब से आई हैं लगातार चकर-चकर किए जा रही हैं। लड़कियों को कैसे चुप रखती होंगी ? अच्छा, उनके स्कूल के सर लोग भी जब आपस में मिलकर बैठते होंगे तो इस तरह बातें करते होंगे ? बच्चों को तो सब लोग कैसा डाँटते हैं—चुप रहो—शोर मत करो। क्या क्लास को भाजी-मार्केट बना रखा है ?

उसने कभी भाजी-मार्केट देखा नहीं...शायद बहुत शोर की जगह होती होगी ! जितना शोर यहाँ हो रहा है, उससे भी ज़्यादा ?

"भई बंटी तो बहुत समझदार हो गया है।"

"एकदम राजा बेटा की तरह काम कर रहा है।"

"हमारी पिंकी तो लड़की है। पर एक भी काम तो करवा लो ज़रा। एक बात कहो कि दस जवाब हाज़िर हैं।"

"अरे मिसेज़ बत्रा का बेटा है आख़िर। होशियार नहीं होगा।" मोटी मिसेज़ सक्सेना बोलीं।

हूँ, मक्खनबाज़ कहीं की। वह जानता है, कोई उसकी तारीफ़ नहीं कर रहीं, सब ममी को मक्खन लगा रही हैं। एक बार कॉलेज गया था तो यही मोटी बड़े गाल सहला-सहलाकर कहती रहीं—"हाऊ स्वीट, जानती हो कितना इंटेलिजेंट है यह ?" और जैसे ही वह पीछे मुड़ा धीरे से बोलीं—अरे मिसेज़ बत्रा ने बिगाड़कर धूल कर रखा है, इतना ज़िद्दी और सिर-चढ़ा लड़का है कि बस। प्रिंसिपल का लड़का है सो कोई कुछ कहता नहीं—मोटी चापलूस कहीं की। माथे पर बिंदी इतनी बड़ी लगाएँगी जैसे पैसा ही चिपका लिया हो। बस, एक दीपा आंटी अच्छी हैं, जो न कभी इस तरह की तारीफ़ करती हैं न बुराई। मौक़ा मिले तो उसके साथ खेलती भी हैं।

चाय समाप्त हुई तो सब लोग बाहर के कमरे में आ गईं। वह दीपा आंटी की कुर्सी पर ही बैठ गया। उनसे सटकर, एक तरह से उन पर लदकर। ममी ने पास के रैक पर से फ़ाइल उठाई, बीच की मेज़ अपनी तरफ खींची और ढेर सारे कागज़ फैला लिए।

"दीपा आंटी, आप गाना नहीं सुनाएँगी ?"

"देखो बच्चा, ममी अब मीटिंग कर रही हैं, समझे ?" लाड़ में वे उसे हमेशा बच्चा ही कहती हैं।

"ममी, हम दीपा आंटी का गाना सुनेंगे, आंटी को गाना सुनाना ही होगा।" और वह पूरी तरह दीपा आंटी की गोद में ही लद गया, कुछ इस विश्वास के साथ कि ममी उसकी बात टाल ही नहीं सकती हैं। इतना काम उसने आज किया है, अब तो वैसे भी उसका अधिकार हो गया है।

"बंटी बेटा, अब हम लोग ज़रा काम की बात करेंगे, कॉलेज की; तुम बाहर जाकर खेलो तो !"

ममी की बात बंटी को जैसे कहीं से चीर गई। एक क्षण वह ममी को इस तरह देखता रहा जैसे विश्वास नहीं कर पा रहा हो कि ममी ने उसे ही बाहर जाने को कहा है।

फिर धीरे से उठा और बाहर आ गया, अपमानित-सा, आहत-सा। तो उसकी इच्छा से भी ज़्यादा ज़रूरी काम ममी के पास है। कॉलेज की बात कॉलेज में कर लेतीं, घर में तो कम से कम उसकी बात ही माननी चाहिए। वह तो कब से सोच रहा था कि शाम को दीपा आंटी का गाना सुनेगा फिर अपनी कविताएँ सुनाएगा,

चुटकले सुनाएगा, पहेली पूछेगा। ऐसी-ऐसी पहेलियाँ उसे आती हैं कि कोई बता ही नहीं सकता। लड़कियों को पढ़ाना आसान है, पहेली क्या हर कोई बता सकता है ? पर अब कुछ नहीं...ममी को ऐसे तो नहीं करना चाहिए था न ? और न चाहते हुए भी ममी को लेकर जाने कितना-कितना गुस्सा मन में उफनने लगा।

पर तभी सारे गुस्से और दुख को ठेलती हुई समझदारी आई—ममी प्रिंसिपल हैं, कितने ज़रूरी-ज़रूरी काम उनको रहते हैं, उसे इस तरह गुस्सा नहीं होना चाहिए। कुछ नहीं, दो महीने से ममी सारे दिन घर जो रहती थीं, सो वह कॉलेज की, कॉलेज के काम की बात भूल ही गया था इसीलिए तो गुस्सा भी आ गया वरना तो इसमें गुस्से की कोई बात ही नहीं है। कॉलेज खुल गया है तो कॉलेज का काम भी होगा ही। टीटू के पापा नहीं ऑफ़िस की फ़ाइलें लेकर घर में बैठे रहते हैं। फिर उस कमरे में कोई घुस तो जाएँ देखें ? ऐसा फटकारते हैं कि बस ! ममी ने तो कितने प्यार से कहा। उसके पापा भी फ़ाइलें लेकर आते होंगे ?

खट् से उँगलियों का क्रास बन गया। फिर भी कहीं एक धुँधली-सी तसवीर उभर ही आई...फ़ाइलों में डूबे हुए पापा।

"नहीं-नहीं..." उसने अपने मन को समझाया।

सब लोगों को विदा करके ममी जल्दी से तौलिया लेकर बाथरूम में घुस गईं।

अब वह ममी के साथ खेलेगा। फिर रात में कहानी सुनेगा, ख़ूब लंबीवाली। आज कितना काम किया है उसने। ममी जब कॉलेज का काम करने लगीं तो बाहर भी आ गया। अब न कॉलेज है न कॉलेज का काम। अब ममी फिर उसकी हो गई हैं, बिलकुल उसकी। पता नहीं क्यों ममी और उसके बीच में कोई भी आता है तो उसे अच्छा नहीं लगता।

कॉलेज के दिनों में तो वैसे भी शाम को ही ममी उसकी हुआ करती हैं। बालों की ढीली-ढीली चोटी और मुलायमवाला चेहरा।

ममी मुँह पोछती हुई कमरे में आईं।

"लो, बातों ही बातों में टाइम का कुछ अंदाज़ ही नहीं रहा। सात बजे पहुँचना था और पौने सात तो यहीं बज गए।"

"तुम कहीं जा रही हो ममी ?" अपने को रोकते-रोकते भी बंटी रुआँसा हो आया।

"बेटे, एक बहुत ज़रूरी काम से जाना है, बहुत ही ज़रूरी।" ममी के सधे हुए हाथ खटाखट जूड़े में पिनें खोंसते जा रहे हैं।

"वाह ! मैं अभी भी अकेला रहूँ। आज तो सारे दिन बिलकुल अकेला रहा हूँ ममी।" गुस्से में भरा बंटी का स्वर भर्रा गया।

एक क्षण को ममी का हाथ जहाँ का तहाँ रुक गया। बंटी की ओर देखा, बहुत प्यार से। फिर अपने पास खींचकर दुलारती हुई बोलीं, "मेरा राजा बेटा, अकेला क्यों रहेगा ? टीटू को बुला लेना या उसके यहाँ चले जाना। बस थोड़ी देर में तो आ ही जाऊँगी।"

"टीटू बुलाने से भी आता है इस समय कभी ? इस समय वहाँ जाओ तो उसकी अम्मा..."

"न हो तो साथ ले जाओ न बहूजी।" दरवाज़े पर बैठी सुपारी काटती हुई फूफी ने कहा। "सवेरे से तो अकेला डाँव-डाँव डोल रहा है। आपके साथ थोड़ा टहल आएगा तो मन बहल जाएगा बच्चे का।"

बंटी ने बड़ी आशा-भरी नज़र से देखा। शायद फूफी की सिफारिश ही काम आ जाए।

"कहा न, मैं काम से जा रही हूँ फूफी। वहाँ कहाँ ले जाऊँगी ?" जल्दी-जल्दी साड़ी पहनते हुए ममी ने कहा।

"काम से जा रही हो तो क्या हुआ ? बच्चा होगा तो क्या फेंक जाएँगे ? दो मिनट में तैयार किए देती हूँ।"

"नहीं, बंटी मेरा ख़ूब समझदार है। मेरे काम के बीच में वह क्यों जाएगा ? एक साल से तो कभी कॉलेज भी नहीं जाता। वह क्या समझता नहीं कि बड़ों के बीच में नहीं जाना चाहिए।"

फिर गाल पर एक ज़ोर का किस्सू देकर पूछा, "है न बेटा समझदार !" ममी चली गईं। लोहे के फाटक पर खड़ा-खड़ा बंटी जाती हुई ममी को देखता रहा, आँखों में भर आए आँसुओं को भीतर ही भीतर पीता रहा।

और तब पहली बार बंटी ने महसूस किया कि समझदार बनना कित[illegible] मुश्किल है। ममी की नज़रों में समझदार होकर रहने का मतलब है, कुछ भी मत कहो, कुछ भी मत करो। दूध उसे पसंद नहीं, फिर भी बिना चूँ किए पी लेता है। जो खाने को दो, खा लेता है। जो कुछ करने को कहा जाता है, कर लेता है।

पर ममी भी तो बड़ी हैं, समझदार हैं। उन्हें भी तो वही सब करना चाहिए तो बंटी चाहता है। नहीं क्या ?

अनमना-सा बंटी भीतर आया। बरामदे में ही फूफी ज़मीन पर पसरी पड़ी है।

"ऐसे क्यों लेटी हो फूफी, क्या हो गया।"

"अरे, हम थक गए भय्या, ज़रा कमर सीधी कर लें तो बरतन धोकर चौका साफ़ करें।"

बंटी को लगा जैसे ममी फूफी को थकाकर ख़ुद चली गईं। फूफी, फूफी की थकान उसे कहीं अपने बहुत करीब लगी।

"मैं पैर से कमर दबा दूँ ? अभी ठीक हो जाएगी।"

फूफी उठकर बैठ गई। एकदम बंटी को देखते हुए बोली, "अरे, तुम्हें हो क्या गया है बंटी भय्या ? और सुनो, तुम चले काहे नहीं गए ममी के साथ ? पहले तो कभी अइसे छोड़कर जाने की बात करतीं तो जाने देते तुम ? सारे आँगन में लोट-लोटकर अपना और ममी का जी हलकान कर देते। यह उमिर से पहले बूढ़ा होना हमें अच्छा नहीं लगता तुम्हारा, समझे ? जाओ, खेलो-कूदो। सेवा-चाकरी करने को तुम्हीं रह गए हो हमारी ?"

तो एकाएक बड़ी ज़ोर से मन हुआ बंटी का कि सारे आँगन में लोट-लोटकर रोए—ख़ूब रोए बिलकुल पहले की तरह और जब तक ममी न आ जाएँ रोता ही रहे। ममी चुप करा-कराकर थक जाएँ, तब भी चुप न हो।

रात में जब ममी डॉक्टर जोशी की कार से उतरीं तो बंटी लोहे के फाटक पर खड़ा मन ही मन कहीं रो ही रहा था।

"कैसे हो बंटी ?" कार में बैठे-बैठे ही डॉक्टर साहब ने पूछा।

"मैं बिलकुल ठीक हूँ। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ।" उसने कुछ इस भाव से कहा मानो पूछ रहा हो, "आप यहाँ क्यों आए ?" डॉक्टर साहब की लगाई हुई सुइयों का दर्द और डर मन में फिर ताज़ा होकर उभर आया।

अँधेरे में ही ममी को देखा। वे भी बिलकुल ठीक लगीं। तब ? और रात में जब वह ममी की बगल में लेटा तो बराबर प्रतीक्षा करता रहा कि ममी कुछ कहेंगी। उसने आज जितना काम किया उसके बारे में ही। पर ममी तो इतनी चुप हैं मानो उन्हें पता ही न हो कि बंटी भी उनके पास लेटा है।

ममी उसके पास लेटी बाल सहला रही हैं। पर उसे लग रहा है कि ममी उसके बाल नहीं सहला रहीं। ममी उसे देख रही हैं, पर नहीं, ममी उसे देख भी नहीं रहीं।

"ममी !"

"हूँ !"

"तुम तो बहुत ही ज़रूरी काम से गई थीं, फिर..."

"था रे, एक काम।"

ममी तो शायद उससे बोल भी नहीं रहीं। और तब बंटी का मन हुआ कि फूट-फूटकर रो पड़े।

# सात

बंटी का स्कूल क्या खुला, उसका बचपन लौट आया।

लंबी छुट्टियों के बाद पहले दिन स्कूल जाना कभी अच्छा नहीं लगता। पर आज लग रहा है। अच्छा ही नहीं, ख़ूब अच्छा लग रहा है। सवेरे उठा तो केवल हवा में ही ताज़गी नहीं थी, उसका अपना मन जाने कैसी ताज़गी से भरा-भरा थिरक रहा था।

'ममी, मेरे मोज़े कहाँ हैं...लो दूध लाकर रख दिया। पहले कपड़े तो पहन लूँ, देर नहीं हो जाएगी...बैग तो ले जाना ही है, किताबें जो मिलेंगी' के शोर से तीनों कमरे गूँज रहे हैं।

बहुत दिनों से जो बच्चा घर से गायब था जैसे आज अचानक लौट आया हो।

जल्दी-जल्दी तैयार होकर उसने बस्ता उठाया। बस्ता भी क्या, एक कापी-पेंसिल डाल ली। कौन आज पढ़ाई होनी है ! बस के लिए सड़क पार करके वह कॉलेज के फाटक पर खड़ा हो गया। ममी उसे घर के फाटक तक छोड़कर वापस लौट रही हैं। बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़कर ममी अंदर गुम हो गईं तो सामने केवल घर रह गया। छोटा-सा बँगलानुमा घर जो उसका अपना घर है, जो उसे बहुत अच्छा लगता है।

और एकाएक ही ख़याल आया, इसी घर में पता नहीं क्या कुछ घट गया है इन छुट्टियों में। उसने जल्दी से नज़रें हटा लीं। तभी दूर से धूल उड़ाती हुई बस आती दिखाई दी। बंटी ने खट से बस्ता उठाया और बस के रुकते ही लपककर उसमें चढ़ गया। दौड़ता हुआ टीटू चला आ रहा है, लेट-लतीफ।

"बंटी, इधर आ जा, यहाँ जगह है।" जगह बहुत सारी थी, पर कैलाश ने एक ओर सरककर उसके लिए ख़ास जगह बनाई।

"बंटी यार, इधर ! इधर आकर बैठ।" विभू उसे अपनी ओर खींच रहा है। बंटी अपने को बड़ा महत्त्वपूर्ण महसूस करने लगा। और बैठते ही उसका अपना चेहरा बच्चों के परिचित, उत्फुल्ल चेहरों के बीच मिल गया।

बस चली तो सबके बीच हँसते-बतियाते उसे ऐसा लगा जैसे सारे दिन ख़ूब सारी पढ़ाई करके घर की ओर लौट रहा है। तभी ख़याल आया—धत्, वह तो स्कूल जा रहा है।

बस, जैसे भाजी-मार्केट। बातें...बातें। कौन कहाँ-कहाँ गया ? किसने क्या-क्या देखा ? छुट्टियों में कैसे-कैसे मौज उड़ाई। अनंत विषय थे और सबके पास कहने के लिए कुछ न कुछ था।

बंटी क्या कहे ? वह खिड़की से बाहर देखने लगा। शायद कोई उससे भी पूछ रहा है। हुँह ! कुछ नहीं कहना उसे।

"मेरे मामा आए थे एक साइकिल दिला गए दो पहिएवाली !"

"हम तो दिल्ली में कुतुबमीनार देखकर आए..."

तब न चाहते हुए भी मन में कहीं पापा, पापा का मैकेनो, कलकत्ता, कलकत्ते का काल्पनिक चित्र उभर ही आए।

"क्यों रे बंटी, तू कहीं नहीं गया इस बार ? पिछली बार तो मसूरी घूमकर आया था।"

"नहीं।" बंटी ने धीरे-से कहा।

"सारी छुट्टियाँ यहीं रहा ?"

"हाँ। ममी ने खस के पर्दे लगा-लगाकर सारा घर ख़ूब ठंडा कर दिया था। मसूरी से भी ज़्यादा। बस फिर क्या था।"

और खस के उन पर्दों की ठंडक, जिसने शरीर से ज़्यादा मन को ठंडा कर रखा था, फिर मन में उतर आई।

बंटी फिर बाहर देखने लगा। पर बाहर सड़कें, सड़कों पर चलते हुए लोगों के बीच कभी वकील चाचा दिखाई देते तो कभी ममी का उदास चेहरा। कभी पापा दिखाई देते तो कभी भन्नाती हुई फूफी।

कितनी बातें हैं उसके पास भी कहने के लिए, पर क्या वह सब कही जा सकती हैं ? मान लो वह किसी को बता भी दे तो कोई समझ सकता है ? एकदम बड़ी बातें। यह तो वह है जो एकाएक समझदार बन गया। ये विभू, कैलाश, दीपक, टामी...कोई समझ तो ले देखें।

पर अपनी इस समझदारी पर उसका अपना ही मन जाने कैसा भारी-भारी हो रहा है।

बस जब स्कूल के फाटक पर आकर रुकी तो एक-दूसरे को ठेलते-ढकेलते बच्चे नीचे उतरने लगे। नीचे खड़े सर बोले—"धीरे बच्चो, धीरे ! तुम तो बिलकुल पिंजरे में से छूटे जानवरों की तरह..."

तो बंटी को लगा जैसे वह सचमुच ही किसी पिंजरे में से निकलकर आया

है। बहुत दिनों बाद ! सामने स्कूल का लंबा-चौड़ा मैदान दिखाई दिया तो हिरन की तरह चौकड़ी भरता हुआ दौड़ गया। गरमियों का सूखा-रेतीला मैदान इस समय हरी-हरी घास के कारण बड़ा नरम और मुलायम हो रहा है, जैसे एकदम नया हो गया हो।

नई क्लास, नई किताबें, नई कापियाँ, नए-नए सर...इतने सारे नयों के बीच बंटी जैसे कहीं से नया हो आया। नया और प्रसन्न। हर किसी के पास दोस्तों को दिखाने के लिए नई-नई चीज़ें हैं। जैसे ही घंटा बजता और नए सर आते, उसके बीच में खटाखट चीज़ें निकल आतीं। प्लास्टिक के पजल्स, तसवीरोंवाली डायरी, तीन रंगों की डाट-पेंसिल...और 'ज़रा दिखा तो यार'–'बस, एक मिनट के लिए' का शोर यहाँ से वहाँ तक तैर जाता।

''मेरे पास बहुत बड़ावाला मैकेनो है। इतना बड़ा कि स्कूल तो आ ही नहीं सकता। कलकत्ते से आया है। कोई भी घर आए तो वह दिखा सकता है।''

एक क्षण को उँगलियाँ एक-दूसरी पर चढ़ीं और फिर झट से हट भी गईं। हुँह, कुछ नहीं होता। कोई पाप-वाप नहीं लगता। कोई उसके घर आएगा तो वह ज़रूर बताएगा मैकेनो। सब लोग अपनी चीज़ों को दिखा-दिखाकर कैसा इतरा रहे हैं, शान लगा रहे हैं और वह बात भी नहीं करे।

''विभू, तू शाम को आ जा अपने भैया के साथ। बहुत चीज़ें बनती हैं उसकी–पुल, सिगनल, पनचक्की, क्रेन...''

ख़याल आया, उसने भी तो अभी तक सब कुछ बनाकर नहीं देखा। विभू आ जाए तो फिर दोनों मिलकर बनाएँगे। और विभू नहीं भी आया तो वह ख़ुद बनाएगा। यह भी कोई बात हुई भला !

स्कूल की बातों से भरा-भरा बंटी घर लौटा। खाली बस्ता भी नई-नई किताबों से भर गया था।

ममी अभी कॉलेज में हैं। उसके आने के एक घंटे बाद घर आती हैं। बंटी दौड़कर फूफी को ही पकड़ लाया।

''अच्छा, एक बार इस बस्ते को तो उठाकर देखो।''

''क्या है बस्ते में ?''

''उठाकर तो देखो।'' एकदम ललकारते हुए बंटी ने कहा।

फूफी ने बस्ता उठाया, ''एल्लो, इतना भारी बस्ता ! ये अब तुम इत्ता बोझा ढो-ढोकर ले जाया करोगे ? तुमसे ज़्यादा वज़न तो तुम्हारे बस्ते में ही है।''

बंटी के चेहरे पर संतोष और गर्व-भरी मुसकान फैल गई। ''चलो हटो।'' और फिर खट से बस्ता उठाकर, सैनिक की मुद्रा में चार-छह कदम चला और फिर

बोला, "रोज़ ले जाना पड़ेगा। अभी तो ये बाहर और पड़ी हैं। चौथी क्लास की पढ़ाई क्या यों ही हो जाती है ? बहुत किताब पढ़नी पड़ती हैं।" फिर एक-एक किताब निकालकर दिखाने लगा।

"यह हिस्ट्री की है। कब कौन-सा राजा हुआ, किसने कितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, सब पढ़ना पड़ेगा। समझी ! और हिस्ट्री के राजा कहानियों के राजा नहीं होते हैं, झूठ-मूठवाले। एकदम सच्ची-मुच्ची के, राजा भी सच, लड़ाइयाँ भी सच... और यह ज्योग्रफ़ी है...यह जनरल साइंस...यह एटलस है। हिंदुस्तान का नक़्शा पहचान सकती हो ? लो, अपने देश को भी नहीं पहचानती ! देखो, यह सारी दुनिया का नक़्शा है...इसमें जो यह ज़रा-सा दिख रहा है न, यही हिंदुस्तान है। इसी हिंदुस्तान में अपना शहर है और फिर उस शहर में अपना घर है और फिर उस घर में अपनी रसोई है और फिर उस रसोई में एक फूफी है...हा-हा..." बंटी ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा।

बंटी को यों हँसते देख, फूफी एकटक उसका चेहरा देखने लगी, कुछ इस भाव से जैसे बहुत दिनों बाद बंटी को देख रही हो। फिर गद्गद स्वर में बोली, "हाँ भय्या, मेरी तो रसोई ही मेरा देश है। और देश-दूष मैं नहीं जानती। हुए होंगे राजा-महाराजा, मेरा तो बंटी भय्या ही राजा है।"

"बुद्धू कहीं की ! देख, यह डिक्शनरी है। शब्द-अर्थ समझती है ? किसी शब्द का अर्थ नहीं आए तो इसमें देख लो। चौथी क्लास में एटलस और डिक्शनरी भी रखनी पड़ती है।"

"अब इस बूढ़े तोते के दिमाग़ में कुछ नहीं घुसता भय्या, तुम काहे मगज़ मार रहे हो। चलो हाथ-मुँह धोकर कुछ खा-पी लो। मुँह तो देखो, भूख और गरमी के मारे चिड़िया जैसा निकल आया है।"

बंटी खाता जा रहा है और उसका उपदेश चालू है। "तुम कहती थीं न फूफी कि रात-दिन भगवान करते हैं। पानी भगवान बरसाता है। सब झूठ। जनरल साइंस की किताब में सारी सही बात लिखी हुई है। अभी पढ़ी नहीं है। जब पढ़ लूँगा तो सब तुम्हें बताऊँगा।"

"तो हम कौन इसकूल में पढ़े बंटी भय्या ! बस, अब तुमसे पढ़ेंगे। इंगरेज़ी भी पढ़ाओगे हमें..."

बंटी फिर खीं...खीं...करके हँस पड़ा। फूफी और अंग्रेज़ी। और फिर फूफी जितना भी बातें करती रही, बंटी हँसता रहा...खिल-खिलाकर। फूफी उसे देखती रही गद्गद होकर।

जब ममी आईं तो बंटी ने वे ही सारी बातें दोहराईं। उतने ही उत्साह और जोश के साथ। स्कूल में क्या-क्या हुआ ? नए सर कैसे-कैसे हैं ? "जो सर क्लास

टीचर बने हैं न ममी, उनकी मूँछें ऐसी अकड़कर खड़ी रहती हैं जैसे उनमें कलफ लगा दिया हो। मैंने उनकी शक्ल बनाई और लंच में दिखाई तो सब ख़ूब हँसे, बड़ा मज़ा आया। तुम्हें बताऊँ ममी ?"

विभू ने दिल्ली में जाकर क्या-क्या देखा ? ममी उसे कब ले जाकर दिखाएगी और फिर उसी झोंक में कह गया, "मैंने सबको अपने मैकेनो के बारे में बता दिया। यदि शाम को विभू आया तो उसे दिखाऊँगा भी..." फिर एक क्षण को ममी की ओर देखा, ममी वैसे ही मंद-मंद मुसकरा रही हैं। कुछ भी नहीं, वह बेकार डरता रहा इतने दिनों। खेलने से क्या होता है भला !

"ममी, अब अपना काम सुन लो।" आवाज़ में आदेश भरा हुआ है। "आज ही सारी किताबों और कापियों पर कवर चढ़ जाना चाहिए, ब्राउनवाला। नहीं तो कल सज़ा मिलेगी, हाँ। तुम सब काम छोड़कर पहले मेरे कवर चढ़ा देना। फिर सफ़ेद लेवल काटकर चिपकाने होंगे। उन पर नाम और क्लास लिखना होगा। ख़ूब सुंदरवाली राइटिंग में जमा-जमाकर लिखना, समझीं।"

और फिर उसी उत्साह और जोश में भरा-भरा वह टीटू के यहाँ दौड़ गया। आज जाने कितनी बातें हैं उसके पास करने के लिए। टीटू को कौन-कौन से सर पढ़ाएँगे...उसे कौन-कौन-सी किताबें मिली हैं।

बंटी टीटू के यहाँ से लौटा तो अँधेरा हो चुका था। हाथ में पेड़ की एक टूटी हुई टहनी है, जिससे वह हवा में तलवार चला रहा है। फूफी आँगन में लेटी-लेटी पंखा झल रही है, "यह बरसात की गरमी तो मार के रख देती है आदमी को। हवा का नाम नहीं है कहीं—एक बार ज़ोर से बरसे तो..."

"बरसो राम धड़ाके से, फूफी मर गई फाके से..."

"हाँ, अब तुम हमें मारोगे ही तो।"

"ममी !" बिना कुछ भी सुने-बोले बंटी अपनी ही धुन में भीतर आया तो देखा मेज़ पर सारी किताबें-कापियाँ ज्यों की त्यों पड़ी हैं, बिना कवर के। खाली बस्ता मेज़ के नीचे पड़ा है।

"ममी !" बंटी लॉन की ओर दौड़ पड़ा। लॉन में ममी डॉक्टर साहब के साथ बैठी हैं। बीच की मेज़ पर चाय के खाली बरतन रखे हैं। दनदनाता हुआ बंटी आया। "मेरे कवर नहीं चढ़ाए ममी ?"

"बंटी, नमस्ते करो डॉक्टर साहब को।" ममी ने उसकी बात का जवाब न देकर अपनी बात कही तो बंटी भन्ना गया। दोनों हाथ कुछ इस तरह जोड़े मानो कह रहा हो—जान बख़्शो।

"तुमने मेरे कवर क्यों नहीं चढ़ाए, कल सज़ा नहीं मिलेगी मुझे ?"

"अरे बंटी, बड़े नाराज़ हो रहे हो बेटे ! क्या बात है ?"

'हाँ, हो रहे हैं नाराज़, आपका क्या जाता है ? जब देखो तब आकर बैठ जाएँगे या ममी को ले जाएँगे। बड़ी अपनी मोटर की शान लगाते हैं। अब आकर बैठ गए तो ममी कवर नहीं चढ़ा सकीं न ? और ममी कह नहीं सकती थीं कि उन्हें बंटी का काम करना है। अब उन दोनों का क्या जाएगा, सज़ा तो उसे मिलेगी' वह मन ही मन भनभनाने लगा।

बिना एक शब्द भी बोले बंटी ने हाथ पकड़कर ममी को खींचा, "तुम चलकर पहले कवर चढ़ाओ। एकदम उठो।" डॉक्टर साहब की तरफ उसने देखा भी नहीं।

"बंटी, क्या कर रहे हो बेटा ? इतने बड़े होकर इस तरह करते हैं ! तू तो बहुत समझदार है..."

पर बंटी हाथ खींचता ही रहा। कोई समझदार-वमझदार नहीं है। पहले तो कोई उसका काम मत करो और फिर कह दो समझदार हैं...

"चलो न ! इतनी देर तो हो गई। फिर कब चढ़ाओगी ?" बंटी रोने-रोने को हो आया।

"मैंने कहा न मैं चढ़ा दूँगी।" ममी जैसे झुँझला आई थीं। उन्होंने अपना हाथ खींच लिया।

एकाएक डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए, "चलो, तुम बंटी का काम करो। मैं तो वैसे भी चलने ही वाला था। साढ़े आठ बजे, एक जगह पहुँचना भी है।"

सब लोग ममी को आप-आप कहकर बोलते हैं और ये कैसे तुम कह रहे हैं। इतना भी नहीं मालूम कि ममी प्रिंसिपल हैं। प्रिंसिपल को आप कहा जाता है कि नहीं।

ममी ने एक-दो बार ठहरने का आग्रह किया। पर वे चल पड़े। ममी उन्हें छोड़ने के लिए मोटर तक गईं।

बंटी जानता है कि ममी आते ही उसे डाँटेंगी—ऐसे बोलते हो, ऐसे करते हो...तमीज़ कब आएगी—वह आजकल कुछ कहता नहीं तो ममी ने उसकी बात सुनना ही छोड़ दिया। न कभी साथ लेकर जाती हैं, न कहानी सुनाती हैं—पहले की तरह उसके साथ खेलती भी नहीं। पर ये सारे के सारे तर्क मिलकर भी, उसके अपने ही मन में अभी की हुई बदतमीज़ी को कम नहीं कर पा रहे थे।

जैसे ही ममी लौटकर आई, बंटी ने रोना शुरू कर दिया। ज़ोर-ज़ोर से—"इतनी देर तो हो गई, अब कब चढ़ेंगे कवर ?" दोषी ममी को ही बनाकर रखना है।

"चल, कवर चढ़ाती हूँ।" इसके अलावा ममी ने एक शब्द भी नहीं कहा तो बंटी को ख़ुद एक अजीब तरह की बेचैनी होने लगी। डाँट खानेवाले काम पर भी

ममी का यों चुप रह जाना उसे डाँट से भी ज़्यादा कष्ट देने लगा। डाँट देतीं तो उनकी डाँट से उसकी सारी बदतमीज़ी कट जाती, हिसाब बराबर पर अब तो सारा दोष जैसे उसी के सिर।

कुछ गलत कर डालने के बोझ से दबा-दबा, सहमा-सा वह भीतर आया। ममी ने सारी कापियाँ-किताबें नीचे उतारीं और बोलीं, "ला ब्राउन पेपर कहाँ है ?"

"मेरे पास कहाँ है ब्राउन पेपर ?"

"तब कैसे चढ़ाऊँगी कवर ?" और ममी हाथ पर हाथ धरकर बैठ गईं।

"मैं क्या जानूँ ? तुम्हें मँगवाकर नहीं रखना चाहिए था, मैंने तो आते ही कह दिया था बस !"

बंटी को जैसे अपने व्यवहार के लिए फिर एक सहारा मिल गया और मन में फिर ढेर-ढेर सारा गुस्सा उफनने लगा।

ममी चुप।

"तुम्हें मेरी बिलकुल परवाह नहीं रह गई है। मत करो मेरा कोई भी काम। बस, डॉक्टर साहब के पास बैठकर चाय पियो। तुम्हारा क्या है, सज़ा तो मुझे मिलेगी। मैं अब स्कूल ही नहीं जाऊँगा, कभी नहीं जाऊँगा, कभी भी..." और बंटी फूट-फूटकर रोने लगा।

ममी ने पकड़कर उसे अपनी ओर खींचा, "पागल हो गया है। एक दिन कवर नहीं चढ़ेंगे तो क्या हो गया ? कोई सज़ा नहीं मिलेगी, मैं चिट्ठी लिख दूँगी सर के नाम, चुप हो जा..."

"नहीं, मैं कोई चिट्ठी-विट्ठी नहीं ले जाऊँगा। मैं स्कूल भी नहीं जाऊँगा...गंदी कहीं की..." और कहने के साथ ही बंटी ने ममी की ओर देखा—लो, अब डाँटो, मुद्रा में।

पर फिर भी ममी ने नहीं डाँटा। बस, ममी समझाती रहीं और बंटी उफन-उफनकर रोता रहा। उसे ख़ुद लग रहा है कि यह रोना केवल कवर न चढ़ने का रोना नहीं है। पता नहीं क्या है कि उसे फूट-फूटकर रोना आ रहा है। बहुत दिनों से जैसे मन में कुछ जमा हुआ था, जो एक हलके से झटके से बह आया।

बेबस और अपराधी-सी ममी हाथ पर हाथ धरे बैठी हैं और ज़मीन में पसरकर, पैर फैला-फैलाकर बंटी रो रहा है—मत करो मेरा काम...घूमने जाओ...बातें करो...मैं भी सारे दिन टीटू के यहाँ रहूँगा...पेड़ पर चढ़ूँगा..बिलकुल नहीं पढ़ूँगा...

आँसुओं से सारा चेहरा भीग गया था पर वेग था कि थामे नहीं थम रहा था।

फूफी आई और हाथ पकड़कर उठाने लगी तो बंटी ने हाथ झटक दिया, "मत उठाओ मुझे, रोने दो बस..."

"कइसा ख़ुश-ख़ुश आया था बच्चा स्कूल से। बहुत दिनों बाद तो चेहरे पर ऐसी हँसी देखी थी...आने के बाद दस बार तो कहा था कि कागद चढ़ा देना, पर आपको तो आजकल..." ममी की तरफ़ नज़र पड़ते ही फूफी का उलाहना अधूरा रह गया और बात जहाँ की तहाँ टूट गई।

बंटी रोता रहा, फूफी समझाती रही, और ममी चुप-चुप बैठी दोनों को देखती रहीं। ममी समझा भी सकती थीं, पर समझाया नहीं। डाँट भी सकती थीं, पर डाँटा भी नहीं। और ममी का यों चुप-चुप बैठना ही बंटी को और रुला रहा था।

एकाएक जैसे कुछ ख़याल आया हो। ममी उठीं। दराज़ में से चाबियों का गुच्छा निकाला और फूफी को देते हुए बोलीं, "फूफी, कॉलेज के चपरासी से कहना, स्टील की अलमारी में कुछ भूरे काग़ज़ होंगे, निकालकर दे दे।"

और जब काग़ज़ आ गए और ममी उसी तरह चुपचाप चढ़ाने लगीं तो ममी का सारा दोष जैसे बंटी के अपने सिर पर आ चढ़ा। कम से कम बंटी को ऐसा महसूस हुआ। ममी से नज़रें बचाए-बचाए वह ख़ुद भी चढ़ाने में मदद करने लगा। बीच-बीच में छिपकर ममी की ओर देख भी लेता। ममी नाराज़ हैं ? पर कुछ भी तो पता नहीं लगता। आजकल ममी की कोई भी बात तो समझ में नहीं आती। पहले ममी का चेहरा, ममी की आँखें देखकर ही ममी के मन की बात जान लेता था, ममी की ख़ुशी, ममी की उदासी, ममी की नाराज़गी सब उसे पता था। पर अब ?

"तू जाकर खाना खा ले और सो जा। फिर सवेरे उठा नहीं जाएगा।"

"तुम भी तो चलकर खाना खाओ।" स्वर में कहीं क्षमा माँगने का-सा भाव उभर आया।

ममी ने एक क्षण को उसकी ओर देखा, फिर धीरे-से बोलीं, "नहीं, मैं बाद में खा लूँगी।"

एक क्षण को बंटी दुविधा में रहा, उठे या नहीं। फिर धीरे-से उठ गया। कम से कम इस समय वह ममी की किसी भी बात का विरोध नहीं करेगा।

जाते-जाते बोला, "सफ़ेद लेबिल चिपकाकर नाम भी लिखने हैं।"

"हाँ-हाँ, मैं सब कर दूँगी। तू जाकर सो जा।"

खाना खाकर बंटी बाहर आया तो लगा जैसे भीतर बैठा था तो एक बोझ-सा उस पर लदा था। पता नहीं वह बोझ कवर न चढ़ने का था कि ममी के नाराज़ होने का था या कि अपने ही व्यवहार का था। जो भी हो, बाहर आते ही वह बहुत हलका हो आया और बिस्तर पर लेटते ही सो गया।

सवेरे उठकर बंटी भीतर आया तो देखा सारी किताबें-कापियाँ जमी हुई रखी हैं। कवर चढ़ी हुईं, लेबिल लगी हुईं। सब पर सुंदर अक्षरों में उसका नाम और

क्लास लिखा हुआ है...उसने सबको छूकर देखा, हाथ फेरकर। और मन पुलक आया। पर साथ ही एक क्षण को मन में कल का सब कुछ तैर गया। जैसे भी होगा ममी को ख़ुश करेगा। वह दौड़कर आँगन में आया। ममी बैठी अख़बार पढ़ रही हैं। गले में हाथ डालकर वह झूल गया। ममी मेरी...उसकी समझ में नहीं आ रहा था कैसे अपनी ख़ुशी ज़ाहिर करे, कैसे ममी का गुस्सा दूर करे। और जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो ममी के गाल पर एक किस्सू दे दिया।

ममी ने खींचकर उसे अपने सामने किया। उसके दोनों कंधों पर हाथ रखे उसे देखती रहीं। बस, देखती रहीं। न कुछ कहा, न प्यार दिया। क्या था उन नज़रों में ? गुस्सा, फटकार, प्यार, ख़ुशी—बंटी कुछ भी तो नहीं समझ पाया।

"जा, जल्दी से जाकर तैयार हो जा। देर नहीं हो जाएगी स्कूल में ?" ममी ने बिना एक बार भी प्यार किए उसे भगा दिया।

तैयार होते-होते बंटी के दिमाग़ में यही एक बात घूमती रही। ममी ने उसे एक बार भी प्यार नहीं किया। पहले कभी वह ममी के गाल पर किस्सू देता तो फिर ममी बदले में ढेर सारे किस्सू देतीं...बाँहों में भरकर ख़ूब-ख़ूब प्यार करतीं। ममी क्या उससे नाराज़ हैं ?

नहीं, नाराज़ भी तो नहीं लगतीं। पता नहीं ममी बदल ही गई हैं। पहले की तरह तो बिलकुल ही नहीं रहीं।

और थोड़ी देर पहले की अपराध भावना और पश्चाताप फिर गुस्से में घुलने लगा। पर इस बार का गुस्सा ममी की जगह डॉक्टर जोशी के लिए था। क्यों आते हैं यहाँ इतना ?

बंटी बड़ी ख़ुशी-ख़ुशी तैयार हो रहा है। आज कितने दिनों बाद ममी ने उसे बाहर ले जाने के लिए कहा है। कॉलेज से आते ही बोलीं, "बंटी, तैयार हो जाना, आज घूमने चलेंगे।" तो एक क्षण को तो वह ममी को ऐसे देखता रहा, मानो विश्वास ही नहीं हो रहा हो। इधर तो ममी ने एक तरह से उसे घुमाना ही छोड़ दिया। कभी-कभी जाती हैं तो अकेले। उससे पूछतीं तक नहीं। बस कह देती हैं, मैं जा रही हूँ। ऐसा करना चाहिए ममी को ? उसका क्या है, मत पूछो ! वह भी टीटू के यहाँ खेलने चला जाता है, फूफी को लेकर कुन्नी के यहाँ चला जाता है। अपने खिलौने निकाल लेता है, पापावाले।

"ऐसे क्या देख रहा है ? बता तो कहाँ चलेगा आज ?"

"कंपनी बाग ?"

"क्या पहनेगा ? अच्छे-से कपड़े निकाल ले।" ममी बहुत ख़ुश लग रही हैं आज। आजकल पहले की तरह उदास तो नहीं ही रहतीं।

वह ख़ुद तैयार हो गया, अब ममी का तैयार होना देख रहा है। एक-एक शीशी खुलती है और चेहरे पर चढ़ती हर परत के साथ ममी का चेहरा जैसे नया होता जा रहा है। पाउडर की सफ़ेदी और होंठों की लाली के बीच में ठुड्डी का तिल कैसा चमक रहा है। एकाएक मन हो आया, ममी का तिल छू ले। कितने दिनों से उसने ममी का तिल ही नहीं छुआ। सजती हुई ममी उसे सुंदर लग रही हैं, पर हिम्मत नहीं हो रही कि पास जाए, पता नहीं, आजकल उसके और ममी के बीच कुछ हो गया है।

आज वह ममी के साथ ख़ूब घूमेगा, ख़ूब खेलेगा। ममी को ख़ूब हँसाएगा भी। फिर रात में बिना कहे ही ममी के पलंग में घुस जाएगा और उनके तिल पर हाथ फेरकर कहानी सुनेगा। बस, एक भी बहाना नहीं सुनेगा।

ममी ने अलमारी खोलकर एक डिब्बा निकाला और उसमें से बैंगनी रंग की साड़ी निकालकर पहनने लगीं। सुंदर और एकदम नई।

"यह कौन-सी साड़ी है ममी ?" ममी की एक-एक चीज़ से वह बहुत परिचित है।

"है एक, नई है।"

"कब लाईं, मुझे नहीं बताई ?" शिकायत के स्वर में बंटी ने कहा।

ममी का साड़ी बाँधता हाथ रुक गया। कुछ क्षण को उनकी नज़रें बंटी के चेहरे पर टिक गईं। ममी कभी-कभी उसकी तरफ़ इस तरह देखती हैं कि लगता है मानो उसको नहीं देख रहीं, उसके चेहरे में कुछ और देख रही हों। फिर हँसकर बोलीं, "मैं जो कुछ करूँ, तुझे बताना ज़रूरी है ? तू तो अभी से अपने..." और वे फिर साड़ी बाँधने लगीं।

मत बताओ, मेरा क्या है ? मैं भी कोई चीज़ लाऊँगा तो नहीं बताऊँगा—कुछ भी करूँगा तो नहीं बताऊँगा। नहीं बताना कोई अच्छी बात है ?

तभी बाहर गाड़ी का हार्न भी सुनाई दिया। लो, ये डॉक्टर साहब आ गए तो अब ममी जाएँगी भी नहीं। मना तो करें अब, वह भी...

"चल, तू जाकर बैठ, मैं अभी आई।"

"हम क्या डॉक्टर साहब के साथ जाएँगे ?" बंटी का सारा उत्साह ही जैसे मर गया।

"और क्या, उनकी गाड़ी में ही तो चलना है।" ममी ने जल्दी-जल्दी दराज़ें और अलमारी बंद कीं। एक क्षण को बंटी का मन हुआ कि मना कर दे। पर गाड़ी में घूमने का लालच भी कम नहीं था।

डॉक्टर साहब ने अपनी बगलवाली सीट का फाटक खोला तो ममी ने भीतर बैठते हुए कहा, "तू पीछे बैठ जा।"

"इसे भी आगे ही ले लो। दोनों बैठ सकोगे।"

पर ममी ने पीछे का फाटक खोलकर कहा, "नहीं, यह पीछे बैठ जाएगा आराम से, आगे मेरी साड़ी मुड़ जाएगी।"

बिना एक भी शब्द बोले अपमानित-सा बंटी चुपचाप पीछे बैठ गया। उसका क्या है, आगे बिठाओ, पीछे बिठाओ या घर ही छोड़ जाओ। नई साड़ी पहनकर कैसा इतरा रही हैं ममी। अब तो दोनों बैठ गए, ये डॉक्टर साहब गाड़ी क्यों नहीं स्टार्ट कर रहे हैं ? एकटक ममी को ही देख रहे हैं, जैसे कभी देखा ही न हो।

"चलिए न !" बंटी से और ज़्यादा देर तक चुप नहीं रहा गया।

"अच्छा बंटी बेटे, आज का प्रोग्राम सिर्फ़ तुम्हारे लिए है। बोलो तो कहाँ चलना पसंद करोगे ?"

डॉक्टर साहब का यों पूछना बंटी को अच्छा लगा।

"कंपनी बाग की फरमाइश की है बंटी ने। पहले बच्चों को ले लीजिए, फिर वहीं चलते हैं।" ममी के कहते ही डॉक्टर साहब ने 'ओ. के.' कहा और कार चला दी।

बंटी मन ही मन जैसे भुन गया। धत्तेरे की। यह भी कोई घूमना हुआ। ममी ख़ुद तो अकेले-अकेले घूमती हैं डॉक्टर साहब के साथ, पर आज उसे घुमाने की बात कही तो सबको बटोर लो। फिर क्यों झूठ-मूठ कहती हैं कि चल तुझे घुमा लाते हैं। यों कहो न सबको घुमाना है। कौन-से बच्चे हैं ?

और मन में पापा के साथ घूमनेवाला दिन तैर गया। बिलकुल अकेले। "बंटी बेटा, आज तुम्हें अपने बच्चों से मिलाएँगे। हमारे यहाँ एक दीदी है, जोत दीदी—एक छोटा भय्या है अमि। दीदी बहुत सीधी और समझदार हैं और अमित बहुत शैतान। एकदम पाजी ! शैतानी करे तो तुम कान खींच देना उसके..."

ममी हँस क्यों रही हैं ? यह भी कोई हँसने की बात है। कोई चुटकुला सुना[illegible] है डॉक्टर साहब ने ?

गाड़ी जब कोठी के सामने रुकी तो बंटी ने उड़ती-सी नज़र डाली। ख़ूब बड़[illegible] है कोठी, पर बगीचा नदारद। बस सामने अहाता-सा है। न घास, न पौधे।

डॉक्टर साहब उतरकर भीतर चले गए तो ममी ने बताया, "यही है डॉक्टर साहब की कोठी।" और फिर उसका चेहरा देखने लगीं।

दरवाज़े में घुसते ही बाईं ओर एक छोटा-सा मकान जैसा बना है, जिस पर बड़ा-सा बोर्ड लगा है, हर जगह दिखाई देनेवाला बोर्ड, 'लाल तिकोन। दो या तीन बच्चे बस।'

"यह क्या है ममी ?"

"डॉक्टर साहब की डिस्पेंसरी। सवेरे डॉक्टर साहब यहाँ बीमारों को देखते हैं।"

''आंटी,'' हलका नीला फ्रॉक पहने एक लड़की दौड़ती चली आ रही है और पीछे-पीछे एक लड़का। दोनों के चेहरों पर ख़ुशी जैसे छलकी पड़ रही है।

तो ममी इन बच्चों को भी जानती हैं, बस वही नहीं जानता।

''देखो जोत, यह है बंटी ! आज तुम लोगों की दोस्ती करवा देते हैं। फिर कभी तुम इसके पास आ जाना, कभी यह तुम्हारे पास आ जाएगा।''

जोत उसे देख रही है, पर वह जैसे अपने में ही सिमटता जा रहा है। ''मैं खिड़की के पास बैठूँगा।'' अमि ने आते ही घोषणा कर दी और पीछे का फाटक खोलकर वह बड़े अधिकार भाव से भीतर बैठ गया। बंटी को लगा अपनी चीज़ होने पर ही ऐसा अधिकार भाव आ सकता है। वह चुपचाप एक ओर को सरक गया। दूसरे फाटक से जोत घुसी तो वह बीच में सरक गया।

बीच में बैठना भी कोई बैठना होता है ? अब कुछ देख सकता है वह ? दूसरों की गाड़ी में वह कहे भी क्या ? पर ममी तो कह सकती थीं कि दोनों में से कोई एक बीच में बैठ जाए और बंटी को खिड़की पर बैठने दे। वे तो बंटी को घुमाने लाई थीं। झूऽठ ! उसे नहीं करनी दोस्ती किसी से। आगे से वह कभी आएगा भी नहीं इनके साथ। डॉक्टर साहब, ममी आगे की खिड़कियों पर बैठे हैं और जोत और अमित पीछे की खिड़कियों पर। बस वही फालतू-सा बीच में बैठा है।

घास पर ममी और डॉक्टर साहब अपने-अपने रूमाल बिछाकर बैठ गए, ''जाओ, खेलो अब तुम लोग। रेस लगाओ या कुछ और।'' अमि तो बिना किसी की राह देखे ही दौड़ भी गया। जोत इधर-उधर देख रही है। वह नहीं खेलेगा। बस यहीं बैठा रहेगा।

ये ममी इतना सटकर क्यों बैठी हैं डॉक्टर साहब से। ऐसे तो कभी ममी किसी के साथ नहीं बैठतीं। बंटी को बहुत अजीब लग रहा है। अजीब और बहुत खराब भी। वह दोनों के बीच घुसता हुआ बोला, ''मैं नहीं खेलूँगा ममी, मन नहीं हो रहा है।''

''ले, यहाँ खेलने आया है कि बैठने। पागल कहीं का, चल दौड़ लगा। जोत, इसे ले जाओ तो अपने साथ।'' ममी ने एक तरह से उसे ठेल दिया। जोत उसका हाथ पकड़कर खींचने लगी तो मजबूरन उसे उठना पड़ा।

पर बंटी न खेला, न दौड़ा। बस ममी के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटता रहा।

ज़रा-सी दूर जाता भी तो मुड़-मुड़कर ममी की ओर देखता रहता। ममी को इस तरह देखकर अजीब-सी बेचैनी हो रही थी उसे। थोड़ी देर में वह फिर ममी के पास आकर ही बैठ गया।

''इट सीम्स, ही हसबैंड्स यू टू मच !'' डॉक्टर ने कहा तो ममी हँसने लगीं।

हाँ, हसबैंड की बात कर रहे हैं और ममी हँस रही हैं। पहले पापा की बात करने से कैसी उदास हो जाया करती थीं। और ऐसे सबसे करनी चाहिए पापा की

बात ? ऐसे हँसना चाहिए ? वह तो अपने दोस्तों के सामने भी कभी नहीं करता।

जाने क्यों बंटी का मन गुस्से में सुलगने लगा।

उसके बाद आइसक्रीम खाई, चाट खाई। ममी और डॉक्टर साहब हँस-हँसकर बातें करते रहे। अमि शोर मचाता रहा, अधिकारपूर्ण स्वर में फरमाइशें करता रहा—पापा ये लेंगे, वो लेंगे ? जोत कभी ममी से बात करती, कभी डॉक्टर साहब से। बस केवल बंटी था जो चुप था, सबसे अलग और सबसे अकेला। एक ममी ही तो उसकी थीं, पर वे भी उन्हीं लोगों में जाकर मिल गईं।

# आठ

आज रविवार का दिन है।

गीले बालों को कुर्सी की पीठ पर फैलाए ममी स्वेटर बुन रही हैं। बंटी ढेर सारे रंग और ब्रश लेकर एक चित्र बना रहा है। सवेरे के समय अब धूप में बैठना अच्छा लगने लगा है। फूफी ने सारे आँगन में चटाइयाँ डालकर दालें और गेहूँ फैला रखे हैं। फूफी को इसका ही बड़ा शौक़ है। जब देखो कोई न कोई चीज़ धूप में फैलाए रखेगी। कभी गेहूँ-दालें तो कभी गद्दे-रजाइयाँ। फूफी का बस चले तो बंटी को भी ले जाकर खड़ा कर दे...''अरे जरा घंटे-भर धूप में उलट-पलट दें, नहीं तो फफूँद आ जाएगी।''

दो-चार ब्रश मारकर बंटी एक बार ज़रूर ममी को देख लेता है। यों उसकी तरफ ममी की पीठ है, पर जब वह देखता है तो उसके सामने ममी का चेहरा ही उभरता है। मानो चेहरा पीठ पर उठ आया हो। एकदम बदला हुआ चेहरा। वह क्या जानता नहीं कि ममी कितनी बदल गई हैं इन दिनों। पर अच्छी हो गई हैं या बुरी, यह तय नहीं कर पाया। कभी-कभी देखता है तो अच्छी लगती हैं, पर फिर जाने क्या हो जाता है कि एकदम बुरी लगने लगती हैं। बुरी तो आजकल हो ही गई हैं ममी। उसे तो बहुत पहले से मालूम था कि ममी के पास अपने को बदलने का जादू है। पर कैसा है और कहाँ है, यह आज तक नहीं जान पाया। ममी के पीछे इधर-उधर काफ़ी ताक-झाँक और छान-बीन भी की। पर कुछ पता नहीं लगा। पहलेवाली ममी होतीं तो सीधे ममी से ही पूछ लेता, पर अब ? इनवाली ममी से कुछ पूछा जा सकता है भला ? अभी भी ममी सवेरे सामने बैठकर दूध पिलाती हैं, शाम को पढ़ाती हैं, बातें करती हैं, पर क्या वह जानता नहीं कि ममी न उसे दूध पिलाती हैं, न पढ़ाती हैं, न उससे बातें करती हैं।

वह जो स्वेटर बुन रही हैं वह भी उसके लिए नहीं बुन रहीं। डॉक्टर जोशी के लिए बुन रही हैं। जब तक डॉक्टर जोशी इस घर में नहीं आए थे ममी का हर काम, इस घर का हर काम बंटी के लिए ही होता था। अब सब कुछ डॉक्टर जोशी के लिए होने लगा है। वह सब समझता है। हो, उसका क्या जाता है।

वह तो आज अपनी ड्राइंग पूरी करेगा, ख़ूब अच्छी बनाएगा। जब पूरी हो जाएगी तो पापा को भेजेगा। पापा को चिट्ठी भी लिखेगा। लिखेगा कि गत्ता चिपकाकर या शीशे में मढ़वाकर अपने कमरे में लगा लीजिए।

"फूफी, अब तुम बंटी को नहला दो और फिर खाना शुरू करो। बारह बजे तक खाना बन जाना चाहिए।"

फूफी कुछ जवाब ही नहीं देती। फूफी भी आजकल नाराज़ हैं ममी से। इसीलिए उसे और ज़्यादा अच्छी लगने लगी है फूफी। अच्छा है, धीरे-धीरे सब नाराज़ हो जाएँगे। पर ममी को आजकल परवाह भी रह गई है किसी की। किसी दिन डॉक्टर जोशी भी नाराज़ हो जाएँगे न, तब पता लगेगा।

"बंटी, जाओ बेटे, फूफी से नहा लो !"

"नहीं, मैं अपने-आप नहाऊँगा।" काग़ज़ पर रबड़ घिसते हुए बंटी ने कहा।

"बेटा, इतवार के दिन फूफी से नहा लो। अपने-आप ठीक से साफ़ नहीं हुआ जाता तुमसे।"

"क्यों नहीं हुआ जाता ? ख़ूब हुआ जाता है। मैं अपने-आप ही नहाऊँगा,"

ममी चाहती हैं कि बंटी नहा-धोकर तैयार हो जाए अभी से। आज डॉक्टर साहब जो आनेवाले हैं बच्चों को लेकर। वह नहीं जाता वहाँ तो ममी ने उन लोगों को यहाँ बुला लिया। बुलाएँ उसका क्या जाता है ? जोत से वह बात कर लेगा। जोत उसे अच्छी लगती है, पर वह बंदर कैसी शान लगाता है—मेरे खिलौने हैं, मेरी गाड़ी है।

"बंटी," ममी की आवाज़ की सख़्ती से बंटी को भीतर ही भीतर जैसे [illegible] हुआ। उसने कोई जवाब नहीं दिया। बस, चुपचाप रबड़ घिसता रहा।

"बंटी, मैं बुला रही हूँ न बेटे !"

"क्या है ? मैं ड्राइंग जो बना रहा हूँ।" बंटी टस से मस नहीं हुआ। होगा भी नहीं ! अब ममी गुस्सा होंगी। वह चाहता है कि ममी गुस्सा हों, ख़ूब गुस्सा हों।

पर उसके बाद ममी कुछ नहीं बोलीं। मज़े से बैठी बुन रही हैं जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। जैसे बंटी बिना कुछ कहे नहाने चला गया हो। गुस्सा होनेवाले कामों पर भी ममी जब गुस्सा नहीं होतीं तो फिर बंटी को गुस्सा आने लगता है। मन होता है कुछ करे। ममी को झकझोर कर रख दे।

"ड्राइंग पीछे कर लेना, पहले नहा लो। नौ बज रहे हैं।" उसे पता ही नहीं चला और ममी बगल में आकर खड़ी हो गईं। अब ज़रूर हाथ पकड़कर उठाएँगी।

इतने में बाहर के दरवाज़े पर खटखट हुई तो ममी बाहर चली गईं। छुट्टी हुई।

बाहर कौन आया है ? ममी की बात करने की आवाज़ आ रही है। बंटी भी काग़ज़-पेंसिल छोड़कर बाहर आ गया।

पता नहीं कौन है ? वह नहीं जानता। पर इस घर में कोई भी आए, कुछ भी हो, बंटी की जानने की इच्छा ज़रूर रहती है। बंटी वापस लौटा नहीं, वहीं अपनी मेज़ पर जाकर कुछ उलट-पुलट करने लगा।

बीच की मेज़ पर दो-तीन मोटी-मोटी किताबें रखी हैं और एक किताब ममी पलट रही हैं। दूर से ही बंटी को रंग-बिरंगी तसवीरें दिखाई दीं तो वह भी चुपचाप ममी के पीछे जा खड़ा हुआ। सुंदर-सुंदर घर, घर नहीं कमरे। पलंग, सोफ़ा-सेट, ड्रेसिंग-टेबुल...रंग-बिरंगे पर्दे, कुशंस...टेबुल-लैंप...

ऐसा कमरा हो तो ?

"इस तरह की चीज़ें आप बना भी सकेंगे ?"

"देखिए, आज तक तो किसी को शिकायत नहीं हुई। मैं ख़ुद क्या...काम देखकर आप ही कुछ कहिएगा..."

तो ममी ऐसी चीज़ें बनवा रही हैं। एक क्षण को बंटी का मन पुलक उठा। पीछे से ममी की कुर्सी के हत्थे पर आ बैठा।

"बोल तुझे कैसा सोफ़ा पसंद है, कैसे पलंग पसंद हैं ?" ममी ने मुसकराते हुए उससे पूछा तो बंटी जैसे उत्साह से भर उठा।

"ठहरो ममी, मैं सब देखकर बताता हूँ।" और वह पन्ने पलट-पलटकर हर चीज़ को बड़े ध्यान से देखने लगा।

"ऐसी सब चीजें हों तो घर अच्छा लगेगा न ?" ममी की इस बात से एक उल्लास-भरी मुसकान उसके चेहरे पर फैल गई। आजकल ममी ख़ुद भी तो अच्छे-अच्छे कपड़े पहनती हैं, अब घर के लिए भी अच्छा-अच्छा सामान बनवाएँगी।

कौन-सी चीज़ पसंद करे ? जो पन्ना पलटता है वही बड़ा सुंदर लगने लगता है।

"डॉक्टर साहब ने भी कुछ पसंद किया है ?"

"जी नहीं, कहा है आप ही पसंद करेंगी।"

और बंटी का सारा उत्साह जैसे ठंडा पड़ गया। यहाँ भी डॉक्टर साहब ! नहीं करता वह पसंद। डॉक्टर साहब के लिए वह कुछ भी नहीं करेगा। अब ममी ही बैठकर करें। वरना सारी किताबों में से सबसे अच्छा छाँटता।

ममी दूसरी किताब देख रही हैं। बंटी ने गुस्से में आकर किताब बंद कर दी और भीतर आ गया। मन में कहीं उम्मीद है कि आवाज़ देकर ममी बुलाएँगी, फिर से पसंद करने को कहेंगी या कि जो पसंद किया है, उसके बारे में राय लेंगी। आज तक बिना उसकी राय के कोई चीज़ ख़रीदी भी है ममी ने। पर ममी ने नहीं

बुलाया तो बंटी जैसे भीतर ही भीतर सुलगने लगा। बुलातीं भी तो वह कौन जाता। वह कौन नौकर है, डॉक्टर साहब का, जो उनके घर के लिए सामान पसंद करेगा। करें ममी अपने-आप बैठकर।

बंटी ने तौलिया उठाया और नहाने घुस गया। आकर देखेंगी कि बंटी तो नहा भी लिया। अपने-आप, बिना फूफी की मदद के।

डॉक्टर साहब की गाड़ी फाटक पर आई तो ममी तेज़-तेज़ चलकर फाटक पर पहुँच गईं। वह नहीं जाएगा। ममी ने आज ख़ुद रसोई में काम किया, पर वह एक बार भी नहीं गया। वरना वह क्या मदद नहीं करवा सकता ? फूफी की मदद तो कई बार की है।

सारा काम करने के बाद ममी ने मुँह धोया और फिर गुलाबी रंग की साड़ी पहनी। ड्रेसिंग-टेबुल के सामने बड़ी देर तक बैठकर जूड़ा बनाती रहीं। डॉक्टर साहब आते हैं तो ममी ख़ूब सज-धजकर रहती हैं। पर ममी को पता ही नहीं कि ममी ढीली-ढीली चोटी में ही बहुत सुंदर लगती हैं। जूड़े में तो एकदम अच्छी नहीं लगतीं। बिलकुल प्रिंसिपलवाला चेहरा हो जाता है। पर वह क्यों बताए ? जूड़े में अगर बंटी गुलाब का फूल लगा दे तो फिर भी अच्छी लगने लगें। गुलाबी साड़ी के साथ गहरे रंगवाला गुलाब का फूल तो बहुत ही सुंदर लगेगा। पर वह नहीं लगाएगा। ममी अपने-आप लगाना चाहेंगी तो तोड़ने भी नहीं देगा। बगीचा उस[illegible] है। सारे पौधे, सारे फूल उसके हैं।

"हल्लो बंटी ! देखो तुम हमारे यहाँ नहीं आते तो हम सब यहाँ आ गए।" बंटी ने मशीनवत् हाथ जोड़ दिए। पर चेहरे पर कोई भाव ही नहीं, न ख़ुशी का न दुख का। जोत की तरफ़ देखा तो वह उसी की ओर देखकर मुसकरा रही थी। हलका नीला फ्रॉक और नीले रिबन का बड़ा-सा फूल। जोत उसे हमेशा ही अच्छी लगती है। अनायास ही उसके चेहरे पर मुसकराहट आ गई।

"जोत, बाहर जो बगीचा देखा न, वह सब बंटी का लगाया हुआ है। बड़ा होशियार है बंटी। तुम लोगों ने तो अपने घर के लॉन का बिलकुल कबाड़ा कर रखा है।"

बंटी ने एक बार उड़ती-सी नज़रों से डॉक्टर साहब की ओर देखा। क्या सचमुच ही वह उसकी तारीफ़ कर रहे हैं ? मन में कहीं हलकी-सी ख़ुशी भी जागी पर ममी को देखो, ऐसे ख़ुश हो रही हैं, जैसे उन्हीं की तारीफ़ हुई हो।

"मैंने गिलास में ब्लाटिंग पेपर डालकर गेहूँ बोए थे।" सबके बीच बंटी को इतना महत्त्वपूर्ण होते देख जैसे अमि यह कहने को विवश हो गया।

सब हँस पड़े। ममी ने खींचकर अमि को अपने पास ले लिया। बहुत प्यार

से बोलीं, "मैं सिखाऊँगी तुझे फूल बोना। सीखेगा ?"

'हुँह ! बड़ा सिखाएँगी। ख़ुद को भी आता है। जैसे हर कोई कर सकता है न यह काम। यह अमि कैसे लाल कपड़े पहनकर आ गया है—हनुमान कहीं का।' और बंटी की आँखों में अमि की एक दुम और तैर गई तो उसे मन ही मन हँसी आने लगी।

ममी अमि और डॉक्टर साहब को लिए-लिए ही भीतर चली गईं। जोत बंटी के पास आ गई और उसका हाथ पकड़कर बोली, "चलो बंटी, हमको अपना बगीचा दिखाओ।"

"तुम्हें सब फूलों के नाम आते हैं ?"

"और नहीं तो क्या ?"

"सिर्फ़ नाम ही नहीं, सब कुछ जानना पड़ता है। बहुत सारी बातें।" बंटी के स्वर में बड़प्पन जैसे छलका पड़ रहा है।

"क्यों बंटी, तितलियाँ आती हैं इस बगीचे में ?"

"आती हैं, पर पकड़ना मत। बहुत बड़ा पाप लगता है, कालावाला।"

ज़मीन पर बैठकर पेंजी की क्यारी की ओर इशारा करके जोत ने पूछा, "इस फूल का क्या नाम है बंटी ?"

"हें-हें—पौधों को उँगली नहीं दिखाते कभी। उँगली दिखाने से मर जाते हैं।" फिर उसने उँगली मोड़कर पौधों की ओर इशारा करने का ढंग बताया। भीतर ही भीतर संतोष-भरा एक गर्व जागा—"बगीचे की कितनी तो बातें होती हैं, हर कोई जान सकता है भला !"

फिर आम का पौधा बताया। अलग-अलग फूलों के नाम बताए। पर जोत जैसे बहुत ज़्यादा दिलचस्पी नहीं ले रही। समझ जो नहीं रही होगी।

"चल अब भीतर चलते हैं। धूप तेज़ नहीं लग रही है ?" जोत उसका हाथ पकड़कर खींचने लगी।

बंटी को अपने बगीचे में धूप कभी तेज़ नहीं लगती। गरमी के दिनों में भी नहीं लगती। सर्दी के दिनों में शाम को सर्दी नहीं लगती। ममी चिल्लाती रहती हैं और वह शाम को पानी देता रहता है। पर जोत की बात टालने की उसकी इच्छा नहीं हुई।

भीतर चलने लगे तो बंटी ने एक सफ़ेद गुलाब तोड़कर कहा, "ला, तेरे बालों में लगा दूँ।" जोत पुलक आई। उसे नीचे बिठाकर बंटी बड़े यत्न से फूल लगाने लगा।

"तू लगा सकेगा ? नहीं तो आंटी जी से लगवा लूँगी।"

"ममी के भी तो मैं ही लगाया करता हूँ।" और कहने के साथ ही ख़याल

आया, बहुत दिनों से उसने ममी के सिर में फूल नहीं लगाया। पर वह क्या करे ? ममी को आजकल...और एक अनमना-सा भाव उसे छूकर निकल गया।

दोनों भीतर पहुँचे। डॉक्टर साहब सोफ़े पर ममी की बगल में बैठे हैं एकदम सट कर। उनका एक हाथ ममी की पीठ पर से होता हुआ ममी के कंधे पर रखा है। दूसरे हाथ में वे ममी को एक सुंदर-सी शीशी सुँघा रहे हैं।

बंटी एक क्षण जहाँ का तहाँ खड़ा देखता रहा। क्या कर रहे हैं डॉक्टर साहब उसकी ममी के साथ ? उसे अजीब-सी बेचैनी होने लगी। वह एकदम ममी के पास चला गया। पर दोनों को जैसे कुछ पता नहीं।

''आह, बहुत अच्छी ख़ुशबू है।'' ममी का चेहरा साड़ी के रंग जैसा ही हो गया है।

''इम्पोर्टेड है। ख़ास तुम्हारे लिए मँगवाया है।'' और डॉक्टर साहब ने शीशी अपनी उँगलियों पर उलटी और ममी की साड़ी के पल्ले पर मलने लगे।

बंटी का मन हुआ खींचकर डॉक्टर साहब को अलग कर दे। उसके भीतर कुछ खौलने लगा। तभी उसकी नज़र अमि पर पड़ी। बड़े मज़े से उसके सारे खिलौने लेकर बैठा खेल रहा है। वह दौड़कर झपटा। ''किसने दिए मेरे खिलौने ?'' और दोनों हाथों से ताबड़तोड़ अपने खिलौने समेटने लगा। अमि ने भी जो हाथ लगा, समेटकर अपनी गोद में दुबका लिया।

''दे मेरे खिलौने।'' बंटी छीनने लगा।

ममी झपटकर आईं, ''क्या कर रहा है बंटी ? खेलने दे न ! तेरा छोटा भाई ही तो है।''

''नहीं, मैं नहीं खेलने देता। कोई नहीं है मेरा छोटा-वोटा भाई।'' अमि से जूझते-जूझते ही उसने जवाब दिया।

ममी ने दोनों हाथों से पकड़कर बंटी को अलग किया, ''बंटी, फिर वही गंदी बात ! तेरे हैं तो क्या हुआ ? थोड़ी देर में खेलकर दे देगा।''

बंटी पूरी ताकत लगाकर अपने को ममी के हाथ से मुक्त करने की कोशिश कर रहा है। बँधे हाथ-पैरों की ताकत जैसे जीभ में आ गई। ''मेरे खिलौने हैं। पापा ने मेरे लिए भेजे हैं, मैं किसी को नहीं दूँगा।'' और एक झटके में ममी के हाथ से छूटकर बंटी अमि पर पिल पड़ा। पता नहीं बंटी ने मारा या केवल अपने बचाव के लिए अमि पहले चीख़ा और फिर रो पड़ा।

''तड़ाक।'' बंटी के गाल पर एक चाँटा पड़ा तो सारा कमरा जैसे घूम गया। बंटी ऊपर से नीचे तक काँप गया। चोट ज़्यादा नहीं थी, पर ममी के हाथ का चाँटा और वह भी सबके बीच में...जोत और अमि के सामने ! वह रोया नहीं, पर उसकी आँखों से जैसे चिनगारियाँ निकलने लगीं।

"शकुन !" डॉक्टर साहब की सख़्त-सी आवाज़ सारे कमरे में फैल गई। "तुमने बंटी को मारा क्यों ? बच्चों की लड़ाई में मारने की क्या बात हो गई ?" और डॉक्टर साहब पास आकर बंटी को गोद में उठाने लगे। पर बंटी छिटककर दूर जा खड़ा हुआ।

एक क्षण को सारे कमरे में सन्नाटा छा गया। जो जहाँ था वह जैसे वहीं जम गया। और फिर बंटी ने उठाकर खिलौने फेंकने शुरू किए...धड़ाधड़ एक-एक खिलौना कमरे में छितरा गया। किसी ने उसे रोका नहीं, किसी ने उसे कुछ कहा नहीं।

फिर उसने अपनी बंदूक उठाई और उसी गुस्से में दौड़ता हुआ बाहर आ गया। कुछ नहीं, पेड़ पर ख़ूब-ख़ूब ऊँचे चढ़कर बंदूक चलाएगा। आकर मना तो करें ममी। मारनेवाली ममी की बात सुनेगा अब वह ? कभी नहीं सुनेगा। ठाँय-ठाँय बंदूक की आवाज़ गूँजती रही, गूँजती रही। पर भीतर से कोई नहीं आया।

और जब भीतर से कोई नहीं आया तो बंटी को रोना आ गया। मन हुआ पेड़ पर से कूद पड़े। अपने हाथ-पाँव तोड़ ले। तब ममी को पता लगेगा कि बंटी को चाँटा मारने का क्या मतलब होता है। और उसकी अपनी ही आँखों के सामने अपना पट्टियों से बँधा शरीर घूमने लगा। वह पलंग पर कराह रहा है, सब लोग चारों ओर खड़े हैं। ममी रो रही हैं...

पर कूदा नहीं गया। तभी फूफी आई। ज़रूर ममी ने ही भेजा होगा। ख़ुद तो हिम्मत नहीं हो रही है आने की।

"बंटी भय्या, चलकर खाना खा लो।"

बंटी और ज़ोर-ज़ोर से बंदूक दागने लगा। जैसे उसने न फूफी को देखा न फूफी की बात सुनी।

"अरे काहे को तुम हमारा खून जलाते हो बंटी भय्या ! कहते हैं न उतरकर खाना खा लो ! फिर मर्ज़ी आए बंदूक चलाना, चाहे तोप।"

"भाग जा यहाँ से, मैं नहीं खाता खाना।" ठाँय-ठाँय...

"जिस घर के लोग लीक छोड़कर चलेंगे, उसमें यही सब होगा। अभी क्या हुआ है, अभी तो बहुत कुछ होगा।" बड़बड़ाती हुई फूफी लौट गई।

अब ?

और एकाएक ही बंटी फूट-फूटकर रोने लगा। कोई मत आओ उसे बुलाने। उसे भूख थोड़े ही लगती है। मरे वह भूखा ? ममी का क्या जाता है ? ममी तो डॉक्टर साहब को खाना खिलाएँगी। अमि को तो ज़रूर अपनी बगल में बिठा रखा होगा। और उस काल्पनिक दृश्य से मन और ज़्यादा-ज़्यादा उफनने लगा।

पेड़ पर बैठा-बैठा बंटी रोता रहा और जब मन का सारा गुस्सा, सारा आवेग आँसुओं के रूप में बह गया तो धीरे-धीरे मन में एक अजीब-सा डर समाने लगा। ममी के गुस्से का डर। इस तरह तो उसने आज तक कभी नहीं किया। ममी ज़रूर गुस्सा होंगी। होंगी नहीं, हैं। तभी तो एक बार भी नहीं आईं, किसी और को भी नहीं आने दिया।

गुस्सा, दुख, अपमान, भूख और डर ने मिलकर बंटी को भीतर से बिलकुल थका दिया। थक ही नहीं गया जैसे भीतर से कहीं बिलकुल सुन्न हो गया। अब तो न गुस्सा आ रहा है न रोना। बस, बार-बार दरवाज़े की ओर देख लेता है...शायद कोई आ जाए, अब भी कोई आ जाए। अगर जोत भी आकर उससे चलने को कहेगी तो वह चला जाएगा।

पर कोई नहीं आया। लगता है, सब लोगों ने खाना खा लिया है। उसका किसी को ख़याल भी नहीं आया ? ममी को भी नहीं ? एक बार आँखें फिर छलछला आईं।

धीरे-धीरे वह नीचे उतरा। एक बार फाटक पर गया। सड़क पर दोपहर का सन्नाटा था। मन हुआ फाटक खोलकर निकल जाए और दौड़ता चला जाए, दौड़ता चला जाए...पर कहाँ ? इन सड़कों का कहीं अंत भी है ? ये उसे कहाँ ले जाएँगी ?

और इस 'कहाँ' से हारकर वह चुपचाप लौट आया और जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो आकर घास पर लेट गया। जब तक कोई बुलाएगा नहीं, भीतर तो वह जाएगा ही नहीं।

पता नहीं कब तक वह आधी सोती आधी जागती स्थिति में पड़ा रहा अचानक ही भीतर से सब लोग एक साथ ही आते दिखाई दिए। उसने झट-से आँखें मूँद लीं। धीरे-धीरे पैरों की आवाज़ें पास आ रही हैं। पर शायद कोई कुछ बोल नहीं रहा। हो सकता है, उसे इस तरह यहाँ पड़ा देखकर उसके पास आएँ, उसे उठाएँ। वह तो चुपचाप आँखें बंद किए पड़ा रहेगा, बस जैसे सो गया हो।

कई जोड़ी पैरों की मिली-जुली आहट सरकते-सरकते पास आई, पर बिना एक क्षण भी कहीं रुके बराबर दूर होती चली गई। शायद सब लोग फाटक पर पहुँच गए। फटाक-फटाक गाड़ी के दरवाज़े बंद हुए और घर्र करती गाड़ी चली गई। अजीब बात है, चलते समय कोई किसी से बात नहीं कर रहा। डॉक्टर साहब भी नहीं बोले ? हर आहट को वह केवल सुन ही नहीं रहा, देख भी रहा है।

चर्र-मर्र...फिर एक आहट, बड़ी परिचित आहट उसके पास चली आ रही है। बंटी को अपनी साँस जैसे रुकती हुई महसूस हुई। लगा आहट पास आएगी तब तक उसकी साँस पूरी रुक जाएगी...आहट बिना उसके पास आए ही भीतर चली

गई, तब भी उसकी साँस रुक जाएगी।

किसी ने झुककर उसे धीरे-से झकझोरा—"बंटी...बंटी ?" बंटी चुप।

तब दो बाँहों ने उसे अपने में समेटा। बिना ज़रा भी विरोध किए वह इस प्रकार से सिमट गया मानो बड़ी देर से इसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। एक बार मन हुआ कि गले में बाँहें डालकर चिपट जाए, पर हिलना तो दूर साँस लेने की हिम्मत नहीं है इस समय उसमें।

फिर गद्दे की नरमाई और कंबल की गरमाई में उसका भूखा-थका शरीर डूबता चला गया, डूबता चला गया और उसे ख़ुद पता नहीं चला कि वह कब पूरी तरह डूब गया।

मेज़ के एक ओर ममी बैठी हैं और सामने की कुर्सी पर बंटी। बीच में प्लास्टिक के सुंदर डिब्बे में वह शीशी रखी है, जो डॉक्टर साहब लाए थे। जादुई शीशी। डॉक्टर साहब का ममी को सुँघाना...साड़ी पर मलना...और फिर तड़ाक...याद नहीं, इसके पहले ममी ने कब मारा था, कभी मारा भी था या नहीं—एक अजीब-सा डर है जो उसके शरीर और मन को जकड़ता जा रहा है।

"बंटी, अब तुम यही सब करोगे ?" ममी की आवाज़ पता नहीं कहाँ से आ रही है।

"आज जो कुछ तुमने किया, वह बहुत अच्छा था न ? कोई घर में आए तो यही सब करना चाहिए ?"

बंटी चुप है। लगा शीशी जैसे मेज़ पर हिलने लगी है।

"इतने साल में मैंने तुझे यही सिखाया है ? यही अक्ल और यही तमीज़ ! जोत को देखा ? कैसा सलीका और तमीज़ है। जबकि उनको देखने-भालनेवाली माँ नहीं है। मैंने तो नौ साल तक तेरे साथ झक मारी है। घूमना-फिरना, मिलना-जुलना, सब कुछ छोड़ दिया था, सिर्फ़ इसलिए कि तू कुछ बन जाए..." आवेश के मारे ममी का स्वर ही नहीं, सारा शरीर भी जैसे थरथरा रहा है।

"पर आज चार लोगों के सामने मेरे मुँह पर जूता मारकर तूने बता दिया कि तू क्या बना है और मैं तुझे क्या बना सकी हूँ।" और ममी का स्वर बिखर गया।

बंटी का अपना मन कहीं गहरे में डूबता जा रहा है।

"तू यह सब क्यों करता है बंटी ? मत कर, ऐसे मत कर बेटे..." और ममी फूट-फूटकर रो पड़ीं। जैसे उस दिन रोई थीं... ठीक उसी तरह।

बंटी का मन हो रहा है कि वह दौड़कर ममी से लिपट जाए। रोए, चीख़े। पर एकाएक शीशी ने जैसे उसे बुरी तरह दबोच लिया और चीख़ जैसे भीतर ही भीतर घुटकर रह गई।

# नौ

बहुत देर तक बंटी बुत बना बैठा रहा और शकुन ने उसे बिस्तर पर लिटा दिया तो धीरे-धीरे सुबककर सो गया।

पर शकुन फिर नहीं सो सकी। आज का सारा दिन, दिन में घटी एक-एक घटना उसे नए सिरे से मथने लगी। बंटी तो रो-पीटकर, सारे खिलौने छितराकर भूकंप मचाता हुआ-सा बाहर चला गया, पर वह जैसे अभी तक उसके कंपन को महसूस कर रही है।

अमि-जोत के सहमे हुए चेहरे और क्षण-भर को डॉक्टर के माथे पर खिंच आए बल...लगा जैसे शकुन से ही कोई भारी अपराध हो गया हो। ज़रूर ही उस समय उसके चेहरे पर बड़ी कातर-सी बेबसी उभर आई होगी, तभी तो डॉक्टर ने पीठ सहलाकर उसे दिलासा दी, "बच्चों की बात को लेकर तुम इतनी परेशान क्यों हो रही हो ? टेक इट ईज़ी..." पर ख़ुद वह शायद ईज़ी नहीं हो पाए थे।

उस समय शकुन के मन में इस तरह गुस्सा उफ़न रहा था कि मन हो रहा था बाहर जाए और बंटी की धुनाई कर दे। पर अच्छा ही हुआ कि गई नहीं वरना इस समय वह बैठी अपने को ही कोस रही होती।

एयर-गन की ठाँय-ठाँय भीतर तक सुनाई देती रही थी और शकुन को लग रहा था जैसे यह शब्द उसके और डॉक्टर के बीच फैलता चला जा रहा है, फैलता चला जा रहा है।

इस समय शकुन के मन में कोई गुस्सा नहीं है। बस, उसे लग रहा है जैसे बंटी उसे हर जगह ही ग़लत सिद्ध कर देता है।

वकील चाचा ने कहा था, "तुम बंटी पर इतना निर्भर करती हो, उसे अपनी ज़िंदगी का केंद्र बनाकर जीना चाहती हो, यही ग़लत है। केवल तुम्हारे लिए ही नहीं, बंटी के लिए भी...लेट हिम ग्रो लाइक ए बॉय, लाइक ए मैन ! सारे समय अपने में दुबकाए रखोगी तो क्या बनेगा उसका ?"

तब ऊपर से चाहे उसने न माना हो, पर भीतर ही भीतर ज़रूर महसूस किया था कि बंटी के प्रति उसका रवैया ग़लत ही रहा है।

और आज डॉक्टर को लेकर वह जहाँ पहुँच गई है, उसके मूल में उस समय कहीं बंटी को अपने से मुक्त करने की इच्छा ही नहीं थी ? यों शायद और भी बहुत कुछ था, पर बंटी भी कहीं था तो सही ही।

अपने को परिचित कराने के बाद डॉक्टर शकुन को अपने घर और बच्चों से परिचित करा रहे थे—जोत बहुत सीधी है और अमि बहुत शैतान। लड़कियाँ ज़िद्दी भले ही हों, पर स्वभाव से शांत और सीधी होती हैं और लड़के जन्म से ही गुस्सैल और ऊधमी।

"लेकिन बंटी उस तरह से ऊधम बिलकुल नहीं करता, ज़िद्दी ज़रूर है फिर भी अपनी उम्र से कहीं ज़्यादा समझदार।" और यह कहते हुए अपने बंटी के प्रति उसके मन में कैसा गर्व जागा था।

"तुम उस पर शायद इतना ज़्यादा हावी रही हो कि वह पूरी तरह लड़का बन ही नहीं पाया। तुमने उसे ऊधम करने ही नहीं दिया—हाँ, औरतोंवाली ज़िद और रोना ज़रूर सिखा दिया।" डॉक्टर सहज भाव से हँस पड़े थे, पर तब भी शकुन ने अपने को अपमानित महसूस किया था।

डॉक्टर शायद भाँप गए थे, "मैं तुम्हें दोष नहीं दे रहा, इस तरह की स्थिति में ऐसा हो जाया करता है। मैं तो स्थिति बता रहा था।"

पर इस संशोधन से स्थिति सँभली नहीं थी। अपने ही मन में एक कचोट थी जो हर बार किसी न किसी बात से गहरी हो जाती थी। ज़िंदगी में हर ओर से कटकर वह पूरी तरह बंटी से जा चिपकी थी। सोचा था, अपना सारा समय और सारा ध्यान वह उसी पर केंद्रित कर देगी...अपने सारे अभावों की पूर्ति उसी से करेगी। लेकिन नहीं, उसने रास्ता ही ग़लत चुना था, अतः उसका हर क़दम भी ग़लत होता चला गया।

और तब उसने एक नई ज़िंदगी शुरू करने का निर्णय ले डाला था। बंटी को अपने से काटकर नहीं, अपने से जोड़कर ही लिया था यह निर्णय।

गर्मियों की छुट्टियों के दो महीने...दो महीने की खिन्नता और ऊब के साथ-साथ बंटी का उन दिनों का व्यवहार। उम्र से पहले ही ओढ़ी हुई उसकी समझदारी को कितनी तकलीफ़ के साथ झेल पाती थी वह। शकुन के हर दुख को अपना दुख और उसकी हर कही-अनकही इच्छा को एक आदेश-सा बना लेने की बंटी की मजबूरी ने शकुन को अपनी ही नज़रों में अपराधी बनाकर छोड़ दिया था। दिन में दो-चार बार पापा की बात करनेवाले बच्चे ने कैसे इस शब्द को काटकर फेंक दिया था...शब्द को ही नहीं, अजय के भेजे खिलौने, उसकी तसवीर तक को अलमारी में बंद कर दिया था। बिना शकुन के चाहे या कहे भी वह उसे प्रसन्न करने का भरसक प्रयत्न करता रहा था और कैसे शकुन का कष्ट बढ़ते-

बढ़ते असह्य-सा हो गया था...

नहीं-नहीं। यह सब अब और नहीं चलेगा, चल नहीं सकता। वे दोनों ही अब अपनी-अपनी ज़िंदगी जिएँगे। शकुन शकुन की और बंटी बंटी की।

और तभी से उसने अपने को धीरे-धीरे काटकर बंटी को और अधिक आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश की है।

वकील चाचा ने केवल संकेत किया था और डॉक्टर ने बहुत ब्लंटली कहा, "यह तुम माँ-बेटों का चूमने-चाटने और गले में बाँहें डाल-डालकर लिपटनेवाला जो रवैया है वह अब बंद होना चाहिए। लगता है, तुम अपनी इस अर्ज को भी बंटी के साथ ही पूरा करती हो। पर अब तो सही जगह और सही ढंग..."

यों शायद बात भीतर तक बेध जाती, पर बात के अंत में जो आमंत्रण-भरा संकेत था वह शकुन को ऊपर से नीचे तक गुदगुदा गया।

तब से उसने बंटी को अपने से अलग सुलाना शुरू किया था। धीरे-धीरे वह आश्वस्त होने लगी थी कि उसने केवल अपने लिए ही नहीं, बंटी के लिए भी एक सही ज़िंदगी की शुरुआत कर दी है। अब बंटी को हर जगह और हर बात में पापा की कमी नहीं अखरेगी...व्यक्ति चाहे बदल जाए पर उस स्थान की पूर्ति तो हो ही जाएगी। अब वह उतना अकेला नहीं रहेगा। दो बच्चों का साथ उसे और अधिक नॉर्मल बनाएगा। ही विल ग्रो लाइक ए बॉय, लाइक ए मैन।

पर उस दिन कंपनी बाग से लौटने पर अकारण ही बंटी का रोना...उसके बाद बंटी का एक अजीब ही उखड़ा-उखड़ा और कटा-कटा-सा रवैया और आज का तूफ़ान...

क्या शकुन से फिर कहीं कोई ग़लती हो गई ? वह इतनी देर से बैठी किस बात का लेखा-जोखा कर रही है और क्यों ? किसलिए वह इतने तर्क पेश कर रही है ?

याद नहीं, पर किसी संदर्भ में एक बार डॉक्टर ने ही कहा था कि मनुष्य जब अपने भीतर ही भीतर बहुत गिल्टी महसूस करता है तो तर्क से वह अपने को जस्टिफ़ाई करता रहता है...अपने हर ग़लत काम को जस्टिफ़ाई करता रहता है। न करे तो इतना अपराध-बोध ढोकर वह जी नहीं सकता। जहाँ जस्टिफ़िकेशन है, वहाँ गिल्ट है।

तो क्या उसके अपने मन में भी कोई गिल्ट है ? इतनी देर से तर्क दे-देकर वह अपने अपराधी मन को ही समझाती रही है ? बार-बार बंटी के हित की दुहाई देकर कहीं वह अपने किसी ग़लत काम को ही तो सही सिद्ध नहीं कर रही ?

मन न इस बात को मानता है, न उस बात को। सही-ग़लत की बात भी

वह नहीं जानती, जानना भी नहीं चाहती। इस समय इतना ही काफ़ी है कि जीवन में जितना भरा-पूरा वह इन दिनों महसूस कर रही है, उसने कभी नहीं किया। बल्कि आज अगर उसे किसी बात का अफ़सोस है तो केवल इसी बात का कि यह निर्णय उसने बहुत पहले क्यों नहीं ले लिया ? क्यों नहीं वह बहुत पहले ही इस दिशा की ओर मुड़ गई ? किस उम्मीद के सहारे वह सात साल तक यों घिसटती रही ? सात साल का वह जीवन मात्र घिसटना ही तो था; घिसटना और तिल-तिल करके टूटना। एक पुरुष का साथ ज़िंदगी को यों भरा-पूरा बना जाता है, यह तो उसने कभी सोचा ही नहीं था...अजय के साथ रहकर भी नहीं।

आज लगता है, साथ रहना भी कितनी तरह का हो सकता है। सारी ज़िंदगी साथ रहकर भी आदमी कितना अकेला रह सकता है और किसी का हलका-सा स्पर्श भी कैसे ज़िंदगी को किसी के साथ होने के एहसास और आश्वासन से भर सकता है।

बाहर से तो कम से कम अभी तक कुछ भी नहीं बदला है। वही कॉलेज, वही घर। बंटी और फूफी भी वही है। पर भीतर से मन का कोना-कोना जैसे भर-सा गया लगता है। उस दिन डॉक्टर की दिलवाई हुई साड़ी पहनकर जब वह गाड़ी में बैठी तो डॉक्टर कुछ देर उसे देखते ही रह गए। वह देखना, केवल देखना-भर नहीं था, कुछ था जिसमें रोम-रोम जैसे भीगता-डूबता चला जा रहा था। केवल उसी समय नहीं, बहुत देर बाद तक भी।

शकुन को ख़ुद कभी-कभी आश्चर्य होता है कि उम्र के छत्तीस वर्ष पार करने पर भी उसके मन में इन सब बातों के लिए किशोर उम्रवाला उल्लास भी है और यौवनवाली उमंग भी। डॉक्टर का साथ होते ही कैसे एकांत की इच्छा हो उठती है और एकांत होते ही...

लगता है, उम्र बीत जाने से कैशोर्य और यौवन नहीं बीत जाता। ये भावनाएँ तो केवल तृप्त होकर ही मरती हैं, वरना और अधिक बलवती होकर आदमी को मारती रहती हैं।

उसकी अपेक्षा डॉक्टर के व्यवहार में एक थिरता है, एक ठहराव। और अकसर उसे लगता है, जैसे डॉक्टर ने अपनी ज़िंदगी से बहुत कुछ पाया है।

डॉक्टर से हुई एक बात आज भी जब-तब उसे याद आ जाती है और केवल याद ही नहीं आती, मन को कहीं हलके-से कचोट भी देती है।

बहुत दिनों से मन में घुमड़ती हुई बात आख़िर उसने पूछ ही ली थी। पूछी चाहे बहुत घुमा-फिराकर थी।

"अच्छा क्या प्रेम सचमुच ही मात्र एक शारीरिक आवश्यकता और एक सुविधाजनक एडजस्टमेंट का ही दूसरा नाम है ? बताओ, तुम्हें क्या कभी अपनी

पत्नी की याद नहीं आती और आती है तो क्यों ? उसे तुम क्या कहोगे ?"

तब सचमुच उसने कहीं चाहा था कि डॉक्टर कह दे कि उसे पत्नी की याद बिलकुल नहीं आती...पत्नी के साथ ही वह सबकुछ भूल भी गया। बात चाहे झूठ ही हो, पर डॉक्टर एक झूठ ही बोल दे। हालाँकि यह सुनने की अपनी इस इच्छा पर भीतर ही भीतर कहीं ग्लानि भी हुई थी। फिर भी...

"अच्छा तो यही होता शकुन, तुम उसका ज़िक्र कभी करती ही नहीं।" डॉक्टर के स्वर की अप्रत्याशित गंभीरता से शकुन के मन में अपनी बात के लिए कहीं पछतावा-सा हुआ।

"प्रमीला के साथ का जीवन—वह जैसा भी था, अच्छा या बुरा...मेरा इतना निजी है कि मैं उसे किसी के साथ शेयर नहीं कर सकता। तुम ग़लत मत समझना और बुरा भी मत मानना। वह एक अध्याय था, जो उसी के साथ समाप्त हो गया और अब मैं उसे किसी के साथ खोलना नहीं चाहता। चाहूँ तो भी खोल नहीं सकता। शायद अब तो अपने सामने भी नहीं।"

फिर थोड़ा-सा मुसकराकर बोले थे, "और अब ज़रूरत भी क्या है ?" बेहद आहत होकर और भीतर तक तिलमिलाकर भी वह ऐसा अभिनय करने का असफल-सा प्रयास करती रही कि उसे डॉक्टर की बात का बिलकुल भी बुरा नहीं लगा।

साथ ही एक अजीब-सी चाह भी उठी—काश, उसके पास भी ऐसा कुछ होता जो निहायत उसका निजी होता। जिसे वह किसी के भी साथ शेयर करना पसंद न करती। जिसे अपने भीतर ही समेटे रहती...कभी-कभी झाँक-भर लेने के लिए ...पर कहीं भी तो कुछ नहीं...

इस न होने से ही वह कभी-कभी डॉक्टर के सामने अकारण ही अपने को बड़ा छोटा महसूस करने लगती है। लगता है, जैसे डॉक्टर ने स्वीकार करके उस पर बड़ी कृपा की है। छोटा बनकर जीना उसके अहं को बर्दाश्त नहीं और बड़ा होकर जीने लायक उसके पास कोई पूँजी नहीं। तब एक अजीब-सी मानसिक यातना में वह अपने को पाती है।

और फिर डॉक्टर ही उसे इस मानसिक यातना से उबारते हैं।

अब तो हर बात के लिए वह डॉक्टर पर इस कदर निर्भर करने लगी है कि लगता है, एक कदम भी डॉक्टर के बिना चल नहीं सकेगी। औरत कहीं की कहीं पहुँच जाए, फिर भी पुरुष का साथ उसके लिए कितना ज़रूरी है...पर वह साथ हो, सही अर्थों में।

नहीं, वह इस साथ के बीच में अब कोई बाधा बर्दाश्त नहीं करेगी। बंटी की

भी नहीं।

कल वह डॉक्टर से ही बात करेगी। डॉक्टर की बातों में, उसके सारे व्यक्तित्व में कुछ ऐसा है जो शकुन को आश्वस्त करता है। डॉक्टर की सुलझी दृष्टि उसे बहुत-सी उलझनों से उबार लेती है।

उसके और डॉक्टर के संबंध की बात शहर के एक ख़ास तबके में फैल ही गई थी और एक दिन कॉलेज के मैनेज़र ने जिस तरह आकर पूछा था तो वह समझ नहीं पाई थी कि बात केवल जानने मात्र के लिए ही पूछी जा रही है या कि जानी हुई बात को एक हलकी-सी भर्त्सना और हिकारत के साथ उस तक वापस पहुँचाया जा रहा है।

मैनेज़र को तो उसने जैसे-तैसे जवाब दे दिया था, पर अपने ही मन को जैसे वह शाम तक जवाब नहीं दे पाई थी।

शाम को जब सारी बात डॉक्टर को बताई तो जाने किस आवेश में कह गई, "ये लोग ज़्यादा चूँ-चपड़ करेंगे तो मैं नौकरी ही छोड़ दूँगी। सँभालें अपनी नौकरी !"

तब उसकी बात पर डॉक्टर केवल हँसा था। कुछ ऐसे हलके-फुलके ढंग से, मानो कुछ हुआ ही न हो... "तुम नौकरी करो या छोड़ो, यह बिलकुल तुम्हारी अपनी इच्छा पर है। पर छोड़ो तो कारण यह नहीं होना चाहिए।"

डॉक्टर एक क्षण को रुका था और शकुन के मन में एक हलका-सा संदेह कौंधा था...क्या डॉक्टर नहीं चाहते कि वह नौकरी छोड़े ? उसका पैसा चाहे न हो, पर क्या उसका पद डॉक्टर के लिए...

"आज मैनेज़र को आपत्ति हुई तो तुमने नौकरी छोड़ दी। कल शहर को आपत्ति होगी तो तुम शहर छोड़ने को कहोगी। और ज़रूर होगी। छोटी जगह है...ऐसी बातें लोग आसानी से पचा नहीं पाते हैं। पर इस तरह कमज़ोर होने से कहीं काम चलता है, चल सकता है ? और सच पूछो तो आपत्ति बाहर नहीं होती है, कहीं मन के भीतर ही होती है। तभी तो हमें ये छोटी-छोटी बातें परेशान कर देती हैं। वरना इन आपत्तियों पर एक मिनट भी जाया करना मैं उचित नहीं समझता। इन लोगों को क्या हक है तुम्हारे व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करने का ?"

पर बंटी ? बंटी की बात तो बिलकुल दूसरी है। और उसका हक भी बिलकुल दूसरा है।

एकाएक शकुन को लगा जैसे प्यास के मारे उसका गला सूख रहा है। सर्दी में कभी रात में प्यास नहीं लगती...पर आज तो प्यास के मारे गला जैसे चिपक-सा गया है। और इतनी देर से उसे पता ही नहीं चला।

शकुन उठी। उसने बत्ती जलाई और पानी पिया। लौटकर उसने देखा बंटी सोया हुआ है। गरदन तक रजाई ओढ़े। एकाएक उसे लगा, जैसे बंटी नहीं अजय सो रहा है। कितना मिलता है उसका चेहरा...

केवल चेहरा ही !

''बहूजी, मत चढ़ाओ इतना सिर ! आख़िर औलाद तो उसी बाप की है ! वे खड़े-खड़े थालियाँ फेंकते थे और ये कटोरी...''

कभी-कभी आश्चर्य होता है कि कैसे आदमी एक छोटे-से अणु में अपना चेहरा, मोहरा, आदत, स्वभाव, संस्कार—सबकुछ अपने बच्चे में सरका देता है। बंटी को देखकर ही एक बार वकील चाचा ने कहा था।

और एक अजीब-सी बेचैनी शकुन के मन में घुलने लगी। केवल बेचैनी ही नहीं, एक खीज, एक हलका-सा आक्रोश। सारी ज़िंदगी अजय शकुन को, शकुन के हर काम और बात को, उसके सोचने और उसके हर रवैये को ग़लत ही तो सिद्ध करता रहा है। शकुन बहुत स्वतंत्र है। शकुन बहुत डॉमिनेटिंग है, शकुन यह है, शकुन वह है...पता नहीं ग़लत कौन था ? वह या अजय...जो भी हो, पर सात साल तक ग़लत होने के अपराध-बोध को उसने किसी न किसी स्तर पर हर दिन ही झेला है।

और अब यह बंटी...ठीक उसी तरह उसे ग़लत और अपराधी सिद्ध करने पर तुला हुआ है। और शायद सारी ज़िंदगी उसे ग़लत ही सिद्ध करता रहेगा। ठीक उसी तरह, जैसे...

पर नहीं, अब वह सबकुछ पहले की तरह अपने ऊपर ओढ़ती नहीं चली जाएगी।

बंटी उसके और अजय के बीच सेतु नहीं बन सका तो वह उसे अपने और डॉक्टर के बीच में बाधा भी नहीं बनने देगी। लेकिन तब ?

और शकुन ने खट से बत्ती बुझा दी। मन के सारे संशय, सारी दुविधाएँ चारों ओर फैले हुए अँधेरे में ही डूब जाएँ...बस !

बंटी सवेरे सोकर उठा तो जाने कैसी निरीहता उसके चेहरे पर छाई हुई थी। एक अजीब-सा सहमापन, एक अजीब-सी बेबसी।

कहाँ, यह तो बिलकुल बंटी है। इसमें अजय कहाँ है ? हर बात के लिए उस पर निर्भर करनेवाला बंटी, उसी का पाला-पोसा और बड़ा किया हुआ बंटी ! अजय तो शकुन के सामने कभी इतना निरीह, कभी इतना बेबस हुआ नहीं। और रात में हलके-से आक्रोश की जो परतें मन पर जमी थीं, बंटी की उस निरीहता के सामने सब एक-एक करके बह गईं।

पर अब बंटी में अजय को देखकर एकाएक कुछ निर्णय ले डालने का जो एक रास्ता शकुन को दिखाई दिया था, वह फिर जैसे कहीं गुम हो गया। और शकुन जहाँ थी, वहीं लौट आई। उतनी ही परेशान, उतनी ही दुविधाग्रस्त।

अपनी परेशानी के क्षणों में आजकल उसे बस डॉक्टर ही याद आते हैं। किस सहजता और आसानी से वह उसकी हर समस्या और परेशानी को अपने ऊपर ओढ़ लेते हैं और उसे मुक्त और निर्द्वंद्व कर देते हैं, पर बंटी को लेकर...

कल चाहे शकुन को परेशान देखकर डॉक्टर ने कुछ न कहा हो, लेकिन उन्हें क्या बुरा नहीं लगेगा ? उन लोगों ने शादी की तारीख़ तय की थी और उस ख़ुशी में ही शकुन ने सबको अपने घर बुलाया था, पर बंटी ने...और तब से ही मन जाने कैसी-कैसी शंकाओं से भरा हुआ है ! बंटी की बात तो डॉक्टर से भी नहीं कर सकती, जिस तरह बहुत चाहने पर भी वह कभी अजय की कोई बात नहीं कर पाई।

कंपनी बाग़ से लौटने के बाद उस दिन बंटी जिस तरह रोया था और उसके बाद से जिस तरह वह कटा-कटा रहता था...डॉक्टर को लेकर जिस तरह का एक मासूम-सा विरोध उसके मन में उफनता रहता है, शकुन सब समझती है। पर जाने कैसा एक आश्वस्त भाव उसके मन में समाया रहता था इन दिनों कि उसने सोच लिया था कि सब ठीक हो जाएगा। बस, जहाँ तक संभव होता वह बंटी को डॉक्टर से बचाकर रखती...पर कल जैसे उसके उस आश्वस्त भाव में एक दरार-सी पड़ गई। केवल आश्वस्त भाव में ही नहीं, जैसे उसके और डॉक्टर के बीच में भी कहीं कोई अनदेखी-अनजानी-सी दरार पड़ गई, जिसे वह महसूस कर रही है, जो उसे भीतर ही भीतर कचोटे डाल रही है।

सचमुच यदि ऐसा हुआ तो ? डॉक्टर का अध्याय तो समाप्त हुआ और ऐसी पूर्णता के साथ समाप्त हुआ कि उसे अब वह अपने सामने भी नहीं खोलते। चाहें तो भी नहीं खोल सकते। पर उसका अध्याय ? कहीं कुछ समाप्त नहीं हुआ, अपनी अगली कड़ी के साथ ज्यों का त्यों उसके साथ चिपका हुआ है। वह कभी समाप्त भी नहीं होगा।

अजय ने तो अपनी स्लेट पर से उसका नाम, उसका अस्तित्व धो-पोंछकर एक नई ज़िंदगी शुरू कर दी है...शायद बहुत सुखी, बहुत भरी-पूरी ! पर उसकी स्लेट को तो...

और फिर अजय को लेकर मन में ढेर-ढेर कटुता उभर आई। साथ ही ख़याल आया कि बंटी यदि सहज ढंग से अपने को उसके और डॉक्टर के बीच में से समेट नहीं लेता तो वह उसे अजय के पास भेज देगी।

अजय उसे ले जाना भी तो चाहते थे। अब क्या हुआ ? इधर तो न कोई

खबर, न सूचना। लेकिन वह भेज देगी।

बंटी को दरार ही बनना है तो मीरा और अजय के बीच में बने। अजय भी तो जाने कि बच्चे को लेकर किस तरह की यातना से गुज़रना होता है...कि पुरानी स्लेट इतनी जल्दी और इतनी आसानी से साफ़ नहीं होती...

पर तभी बंटी का वही निरीह, सहमा और बेबस-सा चेहरा उभर आया। 'ममी, मैंने तो पापा से कह दिया कि ममी के बिना मैं कहीं जा ही नहीं सकता...ममी मैं तुम्हें कब्भी-कब्भी नहीं छोड़ूँगा...मत रोओ ममी...मत...रोओ...' और शकुन रो पड़ी। फूट-फूटकर रोती रही। इस यातना से डॉक्टर भी उसे कैसे उबारेंगे ? उसके पास ऐसा कोई सुख नहीं, पर ऐसी यातना ज़रूर है जिसे वह किसी के साथ शेयर नहीं कर सकती।

इस समय डॉक्टर की बगल में बैठकर भी शकुन का मन कहीं से हलका नहीं हो पा रहा है। बार-बार बात शुरू होती और जैसे बीच में ही टूट जाती है। पता नहीं डॉक्टर क्या सोच रहे हैं, पर शकुन को लग रहा है कि जैसे उन दोनों के बीच कहीं कोई है...शायद बंटी...बंटी के बहाने शायद अजय।

"क्या बात है ? तुम कुछ परेशान नज़र आ रही हो शकुन !" कह दे शकुन ? पर क्या कहे कि बंटी डॉक्टर और उसके संबंध को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है...कि उसे बहुत दिनों से इस बात का आभास था पर...

"बंटी को लेकर परेशान हो ?..."

इतनी देर से जिस प्रसंग को वह बचा रही थी, आख़िर वह आ ही गया। शकुन के चेहरे पर एक अजीब-सी बेबसी उभर आई, जैसे वह कोई अपराध करते हुए पकड़ ली गई हो।

"देखो शकुन बंटी थोड़ा प्रॉब्लम बच्चा है, तो उसकी प्रॉब्लम को तो झेलना ही होगा।"

शकुन को लगा, जैसे डॉक्टर कह रहे हों—इन्फ्लुएंज़ा है तो बदन में तो दर्द होगा ही। इन बातों पर कहीं इस तरह बात की जाती है ? और क्या प्रॉब्लम बच्चा है ? पागल है, उसका दिमाग़ खराब है या कि...

पर नहीं, डॉक्टर से वह अपेक्षा ही क्यों करती है कि उसी की तरह सदय होकर, उसकी तरह माँ बनकर बंटी के बारे में सोचें ! डॉक्टर तो शायद बाप बनकर भी नहीं सोच सकते !

"पर इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है ? यह तो बहुत स्वाभाविक है।"

"क्या ?" एकाएक शकुन चौंकी। डॉक्टर कहीं अजय की ओर तो संकेत

नहीं कर रहे ? पर उसने तो आज तक डॉक्टर से कभी अजय की कोई बात नहीं की...वह कर ही नहीं पाई।

"यह बंटी का रवैया ! तुम्हारे साथ अकेले रहते-रहते वह बहुत पज़ेसिव हो गया है। वह किसी और को तुम्हारे साथ देख नहीं सकता...तुम किसी और को..."

और शकुन के मन में कहीं बहुत पहले कहा हुआ वकील चाचा का एक वाक्य तैर गया—'तुम जानती हो, अजय बहुत इगोइस्ट भी है और बहुत पज़ेसिव भी। अपने-आपको पूरी तरह समाप्त करके ही तुम उसे पा सको तो पा सको, अपने को बचाए रखकर तो उसे खोना ही पड़ेगा...

वह अपने को समाप्त नहीं कर सकी थी, इसलिए उसे अजय को खोना पड़ा। समाप्त तो वह अभी भी अपने को नहीं कर सकेगी। अब अपने को समाप्त करने का मतलब है, अपने और डॉक्टर के बीच का सबकुछ समाप्त कर देना। पर यह तो...शकुन का मन कहीं बहुत गहरे में डूबने लगा।

"तुम्हें बहुत ही धीरज से काम लेना चाहिए। जानती हो, इस तरह बच्चों के साथ सख़्ती करने से वे एकदम चुप्पे हो जाएँगे, बहुत ही सबमिसिव और सहमे हुए और नरमाई से पेश आने से वे उद्दंड हो जाएँगे।"

डॉक्टर जैसे किसी रोगी को उपचार बता रहे हों। केवल उपचार ही था या कुछ और भी।

"बंटी में संतुलन लाने के लिए पहले तुम्हें अपने में संतुलन लाना होगा। पर तुम ख़ुद बहुत समझदार हो शकुन !"

शकुन ने कुछ ऐसी नज़रों से डॉक्टर की ओर देखा मानो इन शब्दों के भीतर की बात को जान ले, असली बात को जान ले।

पर डॉक्टर के चेहरे पर कहीं भी तो कुछ नहीं था। कोई शिकन नहीं, कोई छाया नहीं...या कि शकुन की अपनी दृष्टि ही धुँधला गई है, कुछ भी देखने की सामर्थ्य उसमें नहीं रही है।

वह क्या करे ? छलनी हुआ मन सहज भाव से कुछ भी तो ग्रहण नहीं कर पाता। उसकी आँखें छलछला आईं।

डॉक्टर ने बहुत स्नेह से शकुन की पीठ सहलाई, तो एक बार मन हुआ, वह अपने को डॉक्टर की बाँहों में छोड़ दे।

तो क्या सचमुच ही डॉक्टर के मन में बंटी को लेकर कोई नाराज़गी नहीं, कोई दुर्भावना नहीं ? डॉक्टर के उस स्पर्श ने अनायास ही उसके भीतर की गाँठ को धीरे-से खोल दिया।

"लेकिन..." शकुन है कि चाहकर भी जैसे कुछ नहीं कह पा रही है।

"लेकिन क्या ?"

'तुम नहीं समझोगे डॉक्टर...बंटी, बंटी ने अजय को ज्यों का त्यों इनहेरिट किया, वह कभी मेरे साथ तुम्हें बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। मैं जानती हूँ...' शकुन को लगा, अब वह सारी दुविधा खोलकर रख देगी।

"तो क्या हुआ ?"

पर शकुन से कुछ भी नहीं कहा गया। जाने कैसी लक्ष्मण रेखा है यह अपने अहं या स्वाभिमान की या कि अपने कंगलेपन और अपमान की कि इसके पार वह किसी को नहीं आने देना चाहती। क्या बताए कि आगे क्या हो सकता है या कि पहले क्या हुआ था।

"देखो शकुन, तुम अपने पति की रोशनी में बंटी को देखोगी तो शायद कुछ ग़लत कर बैठो। मैं जानता नहीं, पर सोच सकता हूँ कि उनके लिए शायद तुम्हारे मन में कटुता होगी...अनजाने ही तुम उसी कटुता को...पर यह ठीक नहीं होगा।"

और फिर सारी बात को जैसे समाप्त करते हुए बोले, "अच्छा, तुम बंटी की बात मुझ पर छोड़ दो। इस बात को लेकर अब तुम्हें ज़्यादा परेशान होने की ज़रूरत नहीं है।"

बंटी की बात कैसे छोड़ी जाए, यह शकुन नहीं जानती। यह भी नहीं जानती कि सारे समय अपने काम में व्यस्त रहने पर उसके लिए समय कहाँ है। पर इस समय जैसे उसे किसी ऐसे ही आश्वासन की ज़रूरत थी, किसी ऐसे ही सहारे की, जो उसके थके-हारे मन को सँभाल ले...जिस पर वह अपना सबकुछ छोड़कर निश्चिंत हो जाए।

बड़ी देर से भीतर ही भीतर एक आवेग था जो घुमड़ रहा था—अपने को डॉक्टर की बाँहों में छोड़ते ही जैसे वह फूट पड़ा।

डॉक्टर उसकी पीठ, उसके कंधे सहलाते रहे...उसे सांत्वना देते रहे। क्या था उन सांत्वना-भरे शब्दों में—उस स्नेह-भरे स्पर्श में कि शकुन को लगा, जैसे उसके भीतर से सारे तनाव अपने-आप ढीले होते चले जा रहे हैं...सारे द्वंद्व अपने-आप गलते जा रहे हैं। कहीं भी तो कुछ नहीं...सभी कुछ तो सहज और सुगम हो उठा।

सारा रास्ता अकेले-अकेले चलकर, सारी परेशानियों से अकेले-अकेले लड़कर भी ऐसा आत्मविश्वास और ऐसी शक्ति तो उसने अपने भीतर कभी महसूस ही नहीं की जो आज अपने को पूरी तरह डॉक्टर के हवाले करके वह महसूस कर रही है।

अपने को पूरी तरह देकर, निर्द्वंद्व भाव से समर्पित करके आदमी कितना कुछ पा लेता है।